श्रीशिव-स्वभाव सौरभ

२४८८

A - ८३

Q2:UN55
152M1

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

02:4N55
152M1

❀ श्रीराघवाय नमः ❀

श्रीराघव स्वभाव [illegible]



लेखक

शत्रुहन शरण



श्रीजयचन्दलाल लाहोटी की पुण्य स्मृति में

प्रकाशिका

श्रीसीतादेवी

प्रथमवार १०००]　　　　[निछावर दो रुपये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीराम: शरणं मम ॥

परमादरणीय प्रेमी भक्त की सेवा में -
सादर - - - - - - -

श्री [illegible] जी

स० [illegible]

Q2:4NSS
1B2ML

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 2277......................
दिनांक..

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ नमो राघवाय जानकी रमणाय ॥

दो शब्द

आज से कुछेक वर्ष पहले गोहाटी के सेठ जयचन्दलाल लाहोटी के द्वारा मुझे श्रीराघव गुण गण पर निबन्धावली लिखने की प्रेरणा मिली थी। सेठ जी ने प्रकाशन का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया था। किन्तु निबन्ध लिखने के श्रीगणेश करने के पहले ही उदारचेता सेठ जी श्रीसाकेताधीश की नित्य सेवा में बुला लिये गये। उन साकेत वासी सेठजी की धर्मपत्नी श्रीसीतादेवी तथा उनके सुपुत्र श्री ॐप्रकाश लाहौटी के द्वारा साकेत वासी सेठ जी की पुण्य स्मृति में उन निबन्धावली को लिखने का बार-बार आग्रह होता आया है, परन्तु कतिपय कारणों से यह आलसी लेखनी अब तक उस कार्य को नहीं कर पाई थी। अब जब कलम उठी, तो अन्यान्य प्रेमियों के आग्रह परवश, सर्व प्रथम श्रीराघव स्वभाव ही पर लिखना पड़ा।

कोई मानस महारथी महानुभाव इस विषय पर लिखते, तो उससे जिज्ञासुओं को समुचित लाभ होता। इस अल्पज्ञ लेखनी का यह बाल प्रयास तो हास्यास्पद ही होगा। जो हो, मुझे इसी बहाने श्रीराघव स्वभाव पर चिन्तन करने का अवसर प्राप्त हुआ इसे में अपना सौभाग्य मानता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमने अपने निबन्ध का आधार माना है, श्रीमानसजी श्रीविनयजी, श्रीगीतावली तथा श्रीकवितावलीजी को। जहाँ तहाँ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणादि से भी उद्धरण लिये गये हैं। उपर्युक्त महाग्रन्थों से उद्धरण देते समय, जहाँ तक बना है, हमने श्रीराघव गुणगणों का वही अंश चुना है जिसमें 'स्वभाव' शब्द की स्पष्ट रूप से योजना मिली है। कुछ ऐसे भी उद्धरण हैं, जहाँ स्वभाव शब्द व्यक्त रूप से नहीं लिखे हैं। वहाँ हमने अपनी अल्पमति से ही काम लिया है। उद्धृतांशों के भाव समझने में, लिखने की भाषा में त्रुटि होना तो स्वाभाविक है, हमारे जैसे अल्पज्ञों के लिये। यदि हमारे इस प्रयास से दो चार जिज्ञासुओं को भी कुछ लाभ हो सका तो अपने श्रम को सफल समझेंगे। विज्ञ पाठकों से त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थना।

श्रीरसमोदकुञ्ज
श्रीअयोध्याजी
श्रावणी पूर्णिमा
सं० २०३८ वि०

श्रीमानस प्रेमियों का विनीत अनुचर

शत्रुहनशरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

❀ श्रीमद्राघवाय नमः ❀

सूची पत्र



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

❀ श्री सद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ❀

❀ मङ्गल मूर्तये श्रीमते मरुतात्माजाय नमः ❀

॥ सर्वैश्वर्य्यै श्रीमत्यैचन्द्रकलायै नमः ॥

॥ श्री जानकी रमणो विजयते तराम् ॥

श्री राघव-स्वभाव सौरभ



यस्त्वेकेन कृतेन किञ्चिदुपकरेणापि सन्तुष्यति,
चित्ते लाति कदापि जीवकुकृतान् नैवापकारान् बहून ।
तं नत्वा रघुवंशरत्नमनिशं श्रीरामचन्द्रं प्रभुं,
तस्यैवात्म विशोधनायहि मनाग् दिव्यं स्वभावं ब्रूवे ॥

अर्थात् किसी अकर्मण्य व्यक्ति ने अपने जीवन में श्रीराघव जू की कभी एक साधारण सी सेवा कर दी है। इतने ही में आप उस पर संतुष्ट हो गये। फिर जीवन पर्यन्त आपके स्मरण भजन का नाम तक नहीं लिया। उल्टे कोटि कोटि कुकर्म एवं विमुखता वर्तने लगा। परन्तु आप उसी पूर्व कृत साधारण सेवा को पुनः पुनः याद कर, उसके अपराधों पर ध्यान ही नहीं देते। उन्हीं कृतज्ञशिरोमणि परात्पर ब्रह्म श्री रघुवंशी मणि रामचन्द्रमा जू को हम नमस्कार करते हैं। तथा अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये, उन्हीं के कथञ्चित दिव्य स्वभाव का यहाँ बखान करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस सौभाग्यशाली सज्जन को संत, गुरु, हरि कृपा विशेष रूप से प्राप्त होती है, वही भगवद्भजन में तत्पर होते हैं।
"पाँव देइ एहि मारग सोई। अति हरि कृपा जाहि पर होई॥"

सद्गुरु उपदिष्ट विधि से श्रद्धा विश्वास पूर्वक किया हुआ भजन, अविलम्ब मधुर फल उत्पन्न करता है। तीनों ताप तो तत्काल शान्त हो जाते हैं।
'जासु नाम त्रयताप नसावन।'जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं।'

भजनानन्दी का हृदय अलौकिक सुख शान्ति का रसास्वादन करने लगता है। इसलिये—

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तो भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो॥

भजन करने का सर्वतोन्मुखी लाभ तो भजनानन्दी ही समझेंगे।
'तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाव भाँति बहु भाषा॥'

भोजन कर लेने पर आप भले ही तृप्त हो जायँ, भजन से तो तृप्ति होती ही नहीं। ज्यों ज्यों भजन बढ़ाते जाओ, त्यों त्यों भजन करने की भूख बढ़ती जायगी। भजनानन्दी अपने भजन स्मरण को तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप देना चाहते हैं। अखंड भजन से प्रियतम पादारबिन्द में शीघ्र अनुराग उमगने लगता है।

किन्तु अहर्निश अखण्ड भजन करने की चाह होने पर, भी, हम ऐसा कर नहीं पाते। पूर्व जन्मार्जित पाप संस्कार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मलिन स्वभाव, भोगेच्छा आदि बाधक बन कर, भजन को अखंड रूप देने नहीं देते। ऐसी स्थिति में किसी ऐसी प्रबल शक्ति की ओट लेने को जी चाहता है, जो सभी बाधाओं को परास्त कर, हमें बलात् अखंड भजन में नियोजित कर दे। आइये, हम लोग यह जिज्ञासा, जगद्गुरु भगवान भवानी वल्लभ के समक्ष रखें। वे सुज्ञानशिरोमणि सदा सर्वदा श्रीराम भजन में तत्पर रहते हैं और चाहते हैं कि सभी उन्हीं के समान भजन में तत्पर होवे। वह कृपालु हमारे अभीष्ट प्रश्न का उत्तर अवश्य देंगे।

यह सुनिये ! वे इस प्रश्न का उत्तर सीधे हमें न देकर, श्रद्धा स्वरूपिणी भगवती पार्वती के माध्यम से देते हैं।

'उमा राम स्वभाव जिन जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना ।।'

समझा न आपने ? प्राण प्यारे श्रीवैदेही नयनतारे रघुलाल जू के सुमधुर स्वभाव से आप को परिचित होने में विलंब है, फिर तो आप दिन रात अखंड भजन स्मरण में ऐसे व्यस्त रहेंगे कि आप को अन्य कार्य करने की रुचि ही नहीं होगी, "तजि हरि भजन काज नहिं दूजा" की स्थिति आप को भी श्रीभुसुंडि जी के समान ही हो जायगी।

अब प्रश्न यह बनता है कि उन मनभावनलाल के मधुरातिमधुर स्वभावों का परिज्ञान हो कैसे ? अजी, जब सर्व समर्थ, सकल सुखदायक रघुनायक लाल ही हमारे सहायक हैं, तो हमें क्या क्या नहीं मिलेगा जी ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री मनरंजन नवललाल जू के मधुर मनोहर स्वभाव ज्ञान को हम मोटा-मोटी दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। १-दृष्ट ज्ञान और २-श्रुत ज्ञान। अपने अनुभव चक्षु से, अथवा प्रत्यक्ष लीला दर्शन से प्राप्त स्वभाव ज्ञान दृष्ट कहा जायगा। संतों के मुखारविन्द से सुना हुआ अथवा चरित ग्रन्थों के समीक्षात्मक स्वाध्याय से प्राप्त स्वभाव ज्ञान, श्रुत कहा जायगा। मधुरातिमधुर स्वभाव विशिष्ट श्रीराघव मनभावन जू का श्रुत ज्ञान प्राप्त करना जिज्ञासुओं के लिये दुष्कर नहीं है। थोड़ी सी अन्वेषण करने की श्रद्धा और प्रवृत्ति होनी चाहिये। रही दृष्ट ज्ञान की बात। आप पूछ सकते हैं कि क्या आज भी दृष्ट स्वभाव ज्ञान प्राप्त करना संभव है? अवश्य, भजन भटों के लिये सहज संभव है। इसके लिये भजन विधि बताइये। अच्छी बात है, हम अपनी अल्पमति के अनुसार विधि बताते हैं। दत्तचित्त से आप सुनिये।

आये दिन जिज्ञासु भक्त लोग भी हम लोगों से पूछा करते हैं— "महाराज, मन ध्येय स्वरूप में जमता ही नहीं, इधर उधर बहता फिरता है। इसका क्या उपाय? उपर्युक्त भजन विधि के साथ, इस प्रश्न का भी उत्तर हो जायगा।

यह कितने बड़े खेद की बात है कि जो हमारे आत्म-नाथ श्री रघुनाथ हैं, जो अन्तर्यामी रूप से सदैव हमारे हृदय में ही रहते हैं "अन्तरजामी राम सिय", जो सदा से ही हमारे सब प्रकार से सार सम्हार करने वाले परम सुहृद रहते आये हैं, हम उन्हीं के साक्षात्परिचय से अब तक वंचित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुर्रा तो यह कि आज उनकी सत्ता में भी हम संसय कर बैठते है। विश्वास हो भी तो कैसे ? बिना साक्षात्कार हुये उनकी सत्ता में दृढ़ विश्वास होना, कठिन है।

'निज प्रभु दरसन पायउ, गयउ सकल संदेह ॥'

अतः येन केन प्रकारेण उनका साक्षात्कार तो करना ही है, और करना है मरने के पहले, इसी जीवन में। वह साक्षात्कार चाहे ध्यान देश का हो, या स्वप्न वाला हो, अथवा प्रत्यक्ष इसी चर्म चक्षु से हो।

प्रस्तुत प्रसंग में हम ध्यान साक्षात्कार ही की युक्ति बतावेंगे, क्योंकि स्वभाव ज्ञान ध्यान दृष्ट दिव्य लीला से ही संभव है। यदि आप को ध्यान साक्षात्कार सिद्ध हो जायगा तो वह मनमोहिनी झाँकी निरन्तर आपके हृदय में निवास करती रहेगी। वाह्य दर्शन तो आकस्मिक एवं अल्पकाल स्थायी होते हैं। हृदय देश में श्रीहृदय विहारी युगल किशोर का प्रगट होकर रहना, तो सभी साधनों का चरम फल माना गया है।

'सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं, राम धरे धनुबान ॥ दो०६०

इस ध्यान सिद्धि के लिये यथासाध्य प्रयास करते हुये भी हम प्रभु से प्रार्थना भी करते रहें, क्योंकि यह सिद्धि कृपा साध्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निहकाम ॥'

श्रीमानस ३ । ११

इस साक्षात्कार के बिना, न आपके मोह का आत्यन्तिक विनाश होगा, न हृदय की दिव्यानन्द प्रसविनी कमल कली खिलेगी ।

'तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुन ग्राम ।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रविकुल रवि राम ॥

—श्रीवैराग्य संदिपिनी ।

इस दिशा में साधन करने के लिये आपको सर्वप्रथम, प्रगट रूप से दृश्यमान सद्गुरु के शरणापन्न होना पड़ेगा। क्योंकि विना गुरु कृपा के भगवत्प्राप्ति नही होती ।

'न जन्मना नाध्ययनान्न यज्ञान्न तपः श्रमात् ।
न त्यागादश्नुते ब्रह्म गुरूपसदनं विना ॥'

अर्थात् सद्गुरु शरणागति के बिना, ब्रह्म नहीं मिलते, चाहे उत्तम कुल में आपका जन्म हो, और आप चारों बेदों का साङ्ग स्वाध्याय कर चुके हों । यज्ञ करो, तप करो, त्याग वैराग्य संन्यास धारण कर लो, चाहे समस्त साधन समुदाय से सम्पन्न हो जाओ; ब्रह्म प्राप्ति तो एक मात्र सद्गुरु के माध्यम से ही संभव है । जन्म मरण से मुक्त भी तो विना गुरु कृपा के कोई नहीं होता ।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जौं विरंचि संकर सम होई ॥

श्री मानस ७ । ९३ । ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि आप सद्गुरु चरणाश्रित हैं, तो आप श्रीयुगल किशोर जू के ध्यान करने के पहले, श्रीगुरु विग्रह का ध्यान करिये ।

'ध्यान मूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यं भक्तिमूलं गुरोः कृपा ॥'

—विश्वसारेतन्त्र ।

अर्थात् श्रीगुरु विग्रह के ध्यान किये विना, इष्ट देव का ध्यान साक्षात्कार संभव नहीं, श्रीसदगुरु पूजन के बिना, इष्टदेव का पूजन सिद्धिदायक नहीं होता । श्रीगुरु मुख श्रुत अक्षर ही मन्त्र हैं । श्री गुरु कृपा से ही भक्ति प्राप्त होती है । जब आप श्री सद्गुरु चरण नख का ध्यान करेंगे, तो आप को हृदय विहारी युगल किशोर जू के ध्यान दर्शन के उपयुक्त दिव्य दृष्टि मिलेगी ।

'श्री गुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥

श्रीमानस १/१/५

इसके उपरान्त आप ध्यान धारणा में तत्पर होवें । चित्तवृत्तिं को एकाग्र किये बिना ध्यान जमेगा ही नहीं । और वृत्ति निरोध के लिये आपको अभ्यास और वैराग्य युक्त होना पड़ेगा । योग सूत्र में भी कहा गया है । 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' अर्थात् वृत्ति का निरोध होता है, अभ्यास और वैराग्य से । उसी प्रकार श्रीगीता में भी कहा गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अशंसयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥६।३५

अर्थात् भगवान् कहते हैं हे अर्जुन तुमने जो कहा वैसा ही मन का ठीक ही एकाग्र करना कठिन है, परन्तु अभ्यास और वैराग्य से तो मन एकाग्र हो ही जायगा ।

चित्तवृत्ति को मनहरण जानकीरमण की सुछवि में अटकाने का यत्न अभ्यास कहा जायगा । ऐसे ध्यानाभ्यास में आपको जमकर जुटना पड़ेगा । अन्य इष्ट ध्यान की अपेक्षा, हमारे श्री जानकीरमण जू का ध्यान सुगम है, क्योंकि श्रीराम रूप में सौलभ्य गुण सर्वाधिक है । श्रीमानस-जी, श्रीध्यान मंजरी आदि ग्रन्थों में वर्णित शब्दचित्रों के आधार पर, आप ध्यान कीजिये । प्रथम युगल झाँकी के छाया दर्शन मात्र हो, तो घबड़ाकर अभ्यास छोड़िये नहीं । अभ्यास बल से धीरे धीरे आपकी ध्यान झाँकी स्पष्ट हो जायगी ।

'स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः ॥'

योग सूत्र १ । १४

अर्थात् ध्यानाभ्यास बहुत काल तक चले निरन्तर । एक दिन भी बीच में छूटे नहीं । आदर पूर्वक सांगोपांग सेवन किया जाने पर, अभ्यास दृढ़ अवस्था वाला होता है ।

ध्यान सिद्ध होने पर आप अपने हृदय देश वाले अन्तर्जगत मेंही युगल मनभावन जू की दिव्य लीलाओंके भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन करते रहेंगे। श्री गोस्वामी जी, आदि कवि महर्षि वाल्मीकिजी, आदि चरित्र लेखकों को ध्यान पथसे ही दिव्य लीलाओं के साक्षात्कार हुए हैं। श्रीशंकरजी का ही दृष्टान्त लीजिये।

'हर हियँ राम चरित सब आए।' श्रीमानस १।१११।७

स्मरण रखना चाहिये कि आपका साधनक्रम श्री-सद्गुरु भगवान के तत्त्वावधान में चलना चाहिये।

'गुरु श्रुति सम्मत धरम फलु, पाइय, बिनहि कलेस ॥'

---श्रीमानस २।६१

श्री गुरु कृपा से ही आपको युगल लीलाओं में इष्ट गुण रूपी चिन्तामणि तथा श्रीराघव स्वभाव रूपी माणिक्य सूझेंगे।

'सूझहि रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिकै

१/१/५

इस प्रकार से दृष्ट स्वभाव ज्ञान प्राप्त करने का संकेत मात्र दिया गया। आगे हम श्रुत स्वभाव ज्ञान का ही विशेष रूप से विवेचन करेंगे।

प्रस्तुत निबन्ध में श्री राघव स्वभाव के मर्मज्ञ महानुभावों की सूक्तियों के आधार पर ही हम अपना विवेचन क्रम परिचालित करेंगे। हमें केवल दश ऐसे प्रमाणिक स्वभाव मर्मज्ञों के ही परिचय प्राप्त हैं। सर्व प्रथम हम श्रीगोस्वामिपाद कलिपावनावतार श्रीतुलसीदास जी महाराज का नाम गिनायेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१—श्रीगोस्वामि पाद ने अपने को श्रीराघव स्वभाव जानकर स्वयं भी घोषित किया है। यथा

'तुलसी लख्यो राम ! सुभाउ तिहारो ।' श्रीकवि०७।३।२

'सुनि सुभाउ सील सुजसु, जाचन जनु आयो ।'वि०७८।४

'स्वामी को सुभाउ कह्यो ।' श्रीविनय १३५।५

२—दूसरे स्वभाव मर्मज्ञ हैं महर्षि वाल्मीकि जी । इनको अपने स्वभाव का जानकार स्वयं श्रीमुख से कहा है--

'आयो सरन भजौं न तजौं तिहि, यह जानत रिषि राउ।'
श्रीगीता० ४५ । २

३--तीसरे हैं काकर्षि श्री भुशुंडि जी--

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ ।
केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥ श्रीमानस ७।१२४।४

४--चौथे हैं भगवान श्री शंकर जी--

उमा राम सुभाउ जिन्ह जाना । ताहि भवन तजि भाव न आना।।

५—पाँचवीं स्वभाव जानकर हैं भगवती श्रीपार्वतीजी ।

'सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।।'

६—श्रीहनुमतलालजी को भी श्रीमुख से ही स्वभाव जानकार बताया है ।

'तुम जानहु कपि मोर सुभाऊ ।' श्रीमानस ७।३६।७

७—श्रीलषणलाल जी अन्तरंग परिकर होने के नाते, स्वभाव देखे हुये हैं ।

८—श्री भरतलाल जी--

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ।' २।२६०।५

६– श्री मैथिली जू।

१०–स्वयं आपही।

हम क्रमशः उपर्युक्त स्वभाव वक्ताओं की यथाश्रुत महावाणियों को उद्धृत कर, उन्हीं के अधार पर विवेचन करेंगे।

❁ श्री गोस्वामी कृत स्वभाव वर्णन ❁

श्री गोस्वामिपाद का स्वभाव सर्व प्रथम विविच्य होगा। इनमें श्री विनय पत्रिका के निम्नोद्धृत शत्त (१००) संख्यक पद पर सहृदय पाठक विचार करें।

"सुनि सीतापति शील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ।
सिसुपन तें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम विधुवदन रिसौहैं सपनेहुँ लखेउ न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥
सिला साप संताप विगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुए को पछताउ॥
भवधनु तोरि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध छमाई पायँ परि इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ।
कपि सेवा बस भए कनौड़े कह्यो पवन सुत आउ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ ।।
अपनायो सुग्रीव विभीषन तिन न तज्यो छल छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ।।
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ ।।
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनायास राम पद पाइहै प्रेम पसाउ ।।१०।।

अब हम उपर्युक्त पद के आधार पर, श्रीराघव स्वभाव पर विविचन करेंगे। श्री साकेताधीश जी कोटि कोटि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशों के भी जनक हैं। "उपजहिं जासु अंस ते नाना। संभु विरंचि विष्णु भगवाना ।।" जगत्पिता होने के नाते, प्राणि मात्र पर आपका वात्सल्य दुलार रहना स्वाभाविक है। "अखिल विश्व यह मोरि उपाया। सब पर मोरि बराबर दाया ।।" आप ही विश्वम्भर भी हैं। पिता के समान प्राणि मात्र का भरण पोषण करना आपका स्वभाव है। आनन्द सिन्धु होने के नाते "परिजन पुरजन गुरु पितु माता। राम सुभाय सबहि सुखदाता ।।" यहाँ 'सबहिं' शब्द में प्राणि मात्र का भाव ग्रहण करना चाहिये। आप प्राणों को अनुप्राणित, जीवों को अनुजीवित तथा सुखों को भी सुख देने वाले हैं।

"प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।"

आप प्राणिमात्र के सुहृद सखा हैं। सबका हितचिंतन तथा हितसाधन करते रहना आपका सहज स्वभाव है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।।'

उपर्युक्त स्वभाव के कारण ही आप प्राणिमात्र के प्राण-प्रिय बने रहते हैं।

'को अस जीव जंतु जगमाहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं।।'
सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी।।
सबहि रामप्रिय जेहि बिधि मोही।।' श्रीमानस २/३/२,३

यह सब तो हुये आपके स्वरूप सिद्ध वैयक्तिक गुण स्वभाव। वेदों के द्वारा प्रशंसित विमल रघुवंश में अवतीर्ण होने के कारण, बहुत से आपके स्वभाव कुलोचित भी हैं।

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ।।

उसमें भी आप श्री रघुवंश मणि हैं। अत:

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।।
जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहि परतिय मनु डीठी।।
मंगन लहहिन जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं।।

उदार चक्र चूड़ामणि श्रीरघुवंश विभूषण लाल से आप मनमानी वस्तु माँग लीजिये। आपको मुह माँगा देंगे। याचक को 'न' कहना आपको आता ही नहीं।

काम धेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।

किन्तु याद रहे आप अनिष्ट वस्तु, उस परम सुहृद से पाने की आशा न करें। अज्ञानवश कुपथ माँग कर अपना रोग शोक बढ़ाना चाहें, तो आपके हितैषी यह क्यों कर होने देंगे?

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि योगी।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लौकिक मा का भी स्वभाव होता है, अपनी संतान के मलों को विशोध कर, उसे स्वच्छ बनाना। संतान कृत अक्षम्य अपराधों पर भी दृष्टि न देकर, उसके लालन पालन संरक्षण में सदैव तत्पर रहना। तब भला, जगन्माता मैथिली जी में उपर्युक्त स्वभाव अनन्त गुणित अधिक क्यों न हो? अतः श्री सीतापति होने के नाते श्री राघव में भी साहचर्य गुण प्रभावतः स्वजन दोष अदर्शन एवं लालन पालन संरक्षण स्वभाव बन जाना स्वाभाविक है। दूसरे में पुरस्कारमय स्वभाव से श्री मैथिली जू घोर दंड भाजन अपराधी जीवों के अपराधों को यूक्ति युक्त तर्कों द्वारा अनुशंसित (सिफारिस) कर, श्रुति सेतु रक्षक प्रभु से क्षमा करा, उस पर भी विशेष कृपा करवाती हैं।

केंचित हू अपराध भयै जन माँह छमा करि जौन उमाहै।
ऐसे धनै प्रभु पुंज विनिग्रह दंड तैं दीनन को अँगदा है॥
जो अपराध किये सतकोटिहु दासन कौं दृग ओट न चाहै।
सो वृषभानुकुमारि अली भन एक तुही धरनीतनुजा है॥

कहने का तात्पर्य यह कि श्री सीतापति के स्वभाव में विशेष मधुराई बढ़ी है। श्रीसिया जू के सकरुण स्वभाव के साहचर्य से आपकी करुणा विशेष निखर उठी है। अतः शील स्वभाव वर्णन में चतुर कवि ने आपका यहाँ अभिधान श्री सीतापति साभिप्राय रखा है। कुपात्र व्यक्तियों में भी श्रद्धा भक्ति का किंचित आभास पाकर शील सिंधु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रघुलाल जू उसके असंख्य अक्षम्य अपराधों को भूल कर, उन्हें अधिक से अधिक समादार देते हैं। आप के ऐसे शील रूपी चासनी में पग कर, आपके स्वभाव रूपी छेने का लड्डू विशेष रसनीय हो गया है। तभी तो आपके शील स्वभाव का स्मरण कर, अधम से अधम जीव भी अनायास आपकी कृपा के सहारे भव संतरण की आशा दृढ़ाते हैं।

'नाम लिए पूत को पुनीत कियो पातकीस
आरति निवारी 'प्रभु पाहि' कहें पाल की।
छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की॥
तुलसीऔ तारिबो विसारिबो न अन्त मोहि
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील को॥

श्री कविता० ३०।१८

अर्थात् पापियों में प्रधान था अजामिल। उसने क्रुध यमदूत से डर कर, बेटे का नारायण नामोच्चारण किया। पुत्र नाम में भगवन्नाम का आभास मात्र पाकर, आपने उसे पवित्र मान मुक्तिका अधिकारी बना दिया। गजेन्द्र ने जीवन भर कोई साधना तो की ही नहीं, केवल प्राण संसयापन्न होने पर, 'प्रभु रक्षा करो' ऐसा एक ही बार कहा। इस पर आपने उसकी समुचित रक्षा की। शबरी तो छलियों की बेटी, अभागी, जाति पाँति की नीच गँवार भील की स्त्री थी। उसे भी अपने लीन कर लिया। आप के ऐसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शील स्वभाव को देख कर, हम सब पापियों को भी दृढ़ विश्वास होता है कि आप हमें भी अवश्य संसार से मुक्त कर देंगे, भूलेंगे नहीं ।

ऐसे श्री जानकी वल्लभ लाल जू के मधुर शील स्वभाव को सुन कर, स्मरण कर, सहृदय सज्जनों के तन में रोमाँच, मन में मोद, नयनों में प्रेमाश्रु भर आना स्वाभाविक है । यथा—

बरनि राम गुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ।।
श्रीमानस २/६

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलके मुनिराऊ ।।
२/१७०

प्रेमार्द्र सुकुमार हृदय द्रवन शील होता ही है । कर्म कांडी एवं ज्ञानमार्गी के शुष्क हृदय में दिव्य रसमय प्रेम का संचार भले दूभर है । उनके भाग्य में रसहीन धूल फाँकना ही बदा होता है ।

अक्रोध

श्री रघुलाल जी में क्रोध शून्यता स्वयं सिद्ध है, जन्म जात है । 'शिसुपन ते' पद खंड से यही सूचित होता है । ऐश्वर्य दृष्टि से विचार करने पर, इस में कोई विलक्षणता नहीं भासमान होती । परंब्रह्म श्री साकेत विहारी तो मायातीत हैं ही, उनमें क्रोधादि मायिक विकार की सम्भावना कैसी ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया ॥
क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटइ सकल राम कै दाया ॥

जिनकी कृपा मात्र से मायाबद्ध जीव के हृदय से भी क्रोध भाग जाता है, उनमें क्रोध कैसे प्रवेश कर सकेगा? किन्तु यहाँ माधुर्य लीला का नरनाट्य होता है। मधुमयी नर लीला बिना स्वजन समाज में माधुर्यानन्द का विस्तार संभव भी तो नहीं है। नर लीला करने में नर समाज में प्रचलित क्रोधादि विकारों को लीलाधारी ब्रह्म स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। उस स्वीकृति का तात्पर्य केवल नर लीला मात्र से होता है, कुछ माया के वश में पड़कर नहीं।

हाँ तो, आपकी सहज क्रोध शून्यता के साक्षी हैं, आप के सन्निकट में रहने वाले आपके अन्तरंग परिकर वृन्द। इनमें आपकी माता, पिता, वन्धु गुरु, सेवक, सचिव तथा सखाओं के नाम गिनाये गये हैं। इन महाभाग स्वजन वृन्द ने स्वप्न में भी आपके श्री मुख पर क्रोध का लेश मात्र चिन्ह कभी नहीं देखा।

रनवास की सभी माताओं के वचन हैं—

न कुध्यत्यभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् ।
क्रुद्धान प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क गच्छति ॥

श्रीवाल्मी० २। ४१ ३,२०।४

अर्थात् श्री राघवलाल झूठा कलंक लगाये जाने पर भी, क्रोध नहीं करते थे। स्वयं औरों से क्रोध दिलाने वाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बातें नहीं करते थे। रूठे हुओं को मना कर प्रसन्न कर लेते थे दुःख में समवेदना करने वाले, आज हम लोगों को छोड़ कर, वन में कहाँ जा रहे हैं? स्वयं पिता श्रीचक्रवर्तीजो महाराज कहते हैं—

'न किंचिदाहाहितमप्रियं वचो
न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुम् ।'
२ । १२ । १०८

अर्थात् श्रीरघुनायक सर्वसुदायक जू, कभी किसी से कोई अहित कारक या अप्रिय वचन नहीं कहते हैं। कटुवचन बोलने तो इन्हें आता ही नहीं। स्मरण रखना है कि कटु-वचन क्रुध दशा में ही बोले जाते हैं। स्वयं श्रीभरतलालजी कहते हैं--

'मैं जानऊँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु विसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥

बात यह है कि आपकी माधुर्य लीला का लक्ष्य होता है स्वजन सुख दान।

श्री भरतलाल ने कहा है—

राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन आगर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाय सबहि सुखदाता॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा॥
एहि विधि राम जगत पितु माता। कौसलपुर वासिन्ह सुखदाता॥
एहिविधि सिसु विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर वासिन्ह सुख दीन्हा
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुख दाई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिहि विधि सुखी होहि पुर लोगा। करहि कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बाल चरित हरि बहुविधि कीन्हा। अतिअनंद दासन्ह कहँ दीन्हा

स्वजनों के बीच सुखानन्द का विस्तार करने के लिये आप सदैव हँसमुख बने रहते हैं। आप के ध्यान परक श्लोकों में 'स्मेरवदन' 'प्रसन्न वदन', 'मंद स्मितं' आदि विशेषण इसी बात के साध्य हैं।

अपने स्वजनों के बीच आप अपनी मुख मुद्रा को ऐसे सम्हाल कर रखते हैं कि उन पर किंचित क्रोध का चिन्ह न लक्षित होने पावे। यथा एक बार आप दर्पण में अपने श्री-मुख का प्रतिबिंब देख रहे थे। अपने कुटिल भ्रुकुटि को स्वाभाविक सौन्दर्य बढ़ाने वाली टेढ़ी देखी, तो आप झिझक उठे। भौंह के टेढ़ापन देख कहीं हमारे प्रिय सेवक ऐसा न समझ बैठें कि मैं क्रोध में भर कर भौंह टेढ़ी कर रहा हूँ।

मुकुर निरखि मुख राम भ्रू, गनत गुनहि दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकन्ह, लखि जनि परइ सरोष॥

श्रीदोहावली

ऐसी अक्रोध दशा तो अपने स्वजनों के बीच आप की सदैव बनी रहती है, परन्तु आपके प्रियजनों को दुखाने वाले को आप क्रोध पूर्वक अवश्य दंड देते हैं। सदगुरु श्री वृहस्पति, देवेन्द्र को सावधान करते हुये कहते हैं--

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोकहुँ वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा ॥

दुष्ट दलन में भी क्रोध धारण करना अनिवार्य हो जाता है--यथा

रघुपति कोपि बान झरि झाई। घायल भै निसिचर समुदाई ॥
६। ८७। ८

तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धरते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥
६। ७१। ४

स्वजन दोष अदर्शन

साहिब होत सरोष, सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष, सपनेहुँ राम न उर धरे॥

दो० ४७

अर्थात् दूसरे मालिक तो सेवक का अपराध सुनकर क्रोध से आग बबूला हो जाता है। (यह भी जाँच नहीं करता कि सुनी बात कहाँ तक सच है? वास्तव में मेरे सेवक ने कोई अपराध किया है या नहीं?) परन्तु श्रीराघव लाल सेवक के अपराध को स्वयं अपनी आँखों से देख लेने पर भी, स्वप्न में भी कभी उस पर ध्यान ही नहीं देते। वे तो अपने ही दोषों को देखने लगते हैं, सेवक के अपराधों को तो देख कर भी नही देखते। इसके दृष्टान्त में आपके संग खेलने वाले अनुज सखाओं की करतूत बताई जाती है--बात उस समय की है जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद पंकज मंजु बनी पनही धनुही सर पंकज-पानि लिएँ ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हियें ॥

श्री कविता० १ । ६

सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।
खेलत अवध खोंरि, गोली भौंरा चक डोरि
मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे ॥

श्रीगीता १ । ४३ । ३

उपर्युक्त खेलों के अवसर पर, आपके संग के बालक गण अपनी-अपनी जीत के लिये वेईमानी, धोखे बाजी तक करने से बाज नहीं आते थे, किन्तु आपके अदोषदर्शी नयन उनकी अनीति देखकर भी, अनदेखे बने रहते थे। वेईमानी करने पर भी अजित को कौन जीते? इन्हें अपनी हार की ग्लानि अलग, भोलेभाले सरल स्वभाव वाले परम स्नेही मित्र श्रीराघवजू के प्रति छलाव करने की ग्लानि अलग। ऐसी अवस्था में उन्हें विगत हर्ष देख, आप उनको प्रसन्न करने का जो यत्न करते थे, वह किसी भी सहृदय के सहृदय को स्नेहार्द्र किये बिना नहीं रहेगा। आप अपनी जीती बाजी को हार मान लेते थे। उन्हीं को दाव देकर, उन्हें प्रसन्न कर देते। ऊपर से उनके संकोच को मिटाने के लिये, उन्हें तरह-तरह से दुलराते थे, पुचकारते थे। अपने पक्ष के गोइयों से भी उन्हीं को दाव दिवाते थे। इस सम्बन्ध का एक पद श्रीराम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीतावली में बड़ा ही मार्मिक है। श्री सरयु जी के सुरम्य पुलिन पर, पोलो नामक चौगान खेलने की योजना बनी। पोलो खेलाड़ी घोड़ों पर चढ़ कर, खेलते हैं। गेंद को कर स्थिति लंबे डंडों से मारकर फेंका जाता है। इस खेल में दो दल होते हैं। श्रीरामलालजी के श्रीलषनलालजी के नेतृत्व में कुछ सखा वर्ग का एक पक्ष बना। दूसरे दल का नेतृत्व कर रहे हैं श्रीभरतलाल तथा श्रीशत्रुघ्नलाल जू। गोइयों का विभाजन होने पर. सभी खेलाड़ी चौगान क्रीड़ा में सुशिक्षित घोड़ों पर सवार हुये तथा कर कंजों से विचित्र चौगान खेलने लगे। उस अवसर पर, गगन मंडल देव विमानों से खचा-खच आच्छादित हो गया। इस परमानन्द प्रदायिनी लीला के प्रगट करने वाले श्रीचक्रवर्तीजी महाराज की ससमाज संस्तुति होने लगी। विमानों से देवपुष्पों की बरावर दृष्टि होने लगी। एक खिलाड़ी गेंद को डंडों मार कर, आगे बढ़ाता है तो प्रति पक्षी उसे अपने डंडे से मार कर पुनः लौटा देता है। इस प्रकार खेलते-खेलते श्री राघव लाल तो गये हार, जीत हुई श्रीभरतलालजू की। श्रीराघवलाल को अपनी जीत हार पर ध्यान नहीं है। वे तो परम स्नेही भरत भैया के विजय पर, ऐसे हर्षोन्मत हो उठे कि अपनी ओर से रीझ बाँटने लगे। क्या सखा, क्या सेवक, क्या याचक सभी रीझ पाने लगे। किसी को घोड़े मिले। किसी को हाथी, किसको अनमोल किमखाब की पोशाक, किसी को दुर्लभ अमोल मणिगण। आपके इस सुमधुर स्नेहमय व्यवहार को देख,गगन मंडल जय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जय कार की ध्वनि से मुखरित हो उठा। ऐसे अवसर के महादान से अघा कर, याचकों को जीवन पर्यन्त अन्य द्वार पर याचना करने की आवश्यकता ही नहीं रह गई। प्रेमोन्मत्त दर्शक क्या आकाश स्थित देववृन्द, क्या श्रीअवध के नागरिक निछावर लुटाने लगे। देवताओं और सिद्धों की ओर से आशीर्वादों की झड़ी लग गई। ऐसे परम स्नेह से ओत प्रोत ललति लीलाओं को जो गाते हैं, सुनते हैं, वे भी धन्यातिधन्य हैं। इधर विनयमूर्ति परम राघवस्नेही श्रीभरतलालजी को तो देखिये। आप तो अपनी हार ही से हर्ष मानते हैं, जीतने पर संकोच में गड़ जाते हैं। उनकी धारण है कि स्वामी से सदैव हारने में ही अपनी शोभा है। गोस्वामी पाद ऐसे शील स्वभाव से कृतकृत्य हैं ही। जो इनके अनुराग रंग में रँग गये, वे भी यथार्थ में भुवन पावन सुकृतमान हैं।

❀ मूल पद ❀

राम लषन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥
कंदुक केलि कुसल हय चढ़िचढ़ि,मन कसिकसि ठोंकिठोंकि खये।
कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥२॥
व्योम विमाननि विबुध विलोकत खेलक पेखक छाँह छये।
सहित समाज सराहि दशरथहिं वरषत निज तरु कुसुम-चये ॥३
एक लै बढ़त, एक फेरत, सब, प्रेम-प्रमोद-विनोद-मये।
एक कहत भइ हारि रामजू की, एक कहत भइया भरत जये ॥४
प्रभु बकसत गज-बाजि, वसन-मनि जय-धुनि गगन निसान हये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाइ सखा-सेवक-जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गये ॥५॥
नभ-पुर परति निछावरि जहँ-तहँ, सुर-सिद्धनि बरदान दये।
भूरि-भाग अनुराग उमगि जे गावत-सुनत चरित नित ये ॥६॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए।
तुलसी सुमिरि सुभाव-सील सुकृती तेइ जे यहि रंग-रए ॥७॥



मर्यादा पुरुषोत्तम

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्र सरकार के अवतार का प्रयोजन राक्षस वध मात्र ही नहीं है, प्रत्युत् आपके अवतार का मुख्य हेतु कुछ और है। आपने मर्त्य लोक के मायादेश में रहने वाले मनुष्यों के समक्ष अपने अनुकरणीय आचरणों का आदर्श समुपस्थित किया है। आपके आदर्शों का अनुकरण कर, कोई भी व्यक्ति अपने महापुरुषोचित चरित्र का निर्माण कर सकता है।

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्य शिक्षणं,
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।

श्रीमद्भागवत ५/१९/५

आपके परमोत्तम आचरण का एक आदर्श यह भी है कि आप ब्रह्मण्यदेव हैं। ब्राह्मणों को ही अपना पूज्य इष्ट मानते हैं। तभी तो व्यासदेव ने आपको अनंत ज्ञान भंडार पवित्र कीर्ति मानों में परमोत्कृष्ट कह कर भी, आपके ब्रह्मण्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवत्व को ही नमस्कार किया हैं। निर्वैर सज्जनों को ही आप अपनी श्रीचरण परिचर्या प्रदान करते हैं।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठ मेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्त दंडार्पि तांघ्रये ॥

श्रीभाग० ६।११।७

अहल्योद्धार के अवसर पर आपके ब्रह्मण्य देवत्व स्वभाव का चमत्कार पूर्ण निखार हुआ है।

'ऐसे रामदीन हितकारी ।
साधन हीन दीन निज अघवस सिला भई रिषि नारी ।
गृह ते गवनि परसि पद पावन घोर साप ते तारी ॥

ब्रह्मर्षि गौतम की धर्मपत्नी इन्द्र के संस्पर्श से भ्रष्ट सतीत्व हो गई थी। अपने पति ब्रह्मर्षि गौतम के श्रापसे आप पाषाण वन गई थी। अपने अपकर्म की ग्लानि से संतप्त रहा करती थी। उन्हें श्री राघवलाल ने अपने गुरुदेव श्री विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीचरण स्पर्श करा कर, श्राप एवं संताप से मुक्त कर दिया।

गौतम नारी साप वस, उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर ॥

यह महामहिम श्रीचरण का अचिंत्य प्रभाव था कि श्री अहल्या का किसी भी प्रायश्चित्त से पुनः सत्वीत्व लौटना असंभव था सो वह भी सती धर्मोचित पतिलोक को प्राप्त हुईं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'गई पतिलोक अनन्द भरी' श्री अहल्या के प्रति आपने कितना महान उपकार किया ! पर आप अपने कृत उपकार को तो भूल ही गये। भुलक्कड़ स्वभाव जो ठहरा। भोले भाले राघव जी चार बात तो तत्काल ही भूल जाते हैं।

१—अपने द्वारा किये गये परोपकार को।
२—शत्रु द्वारा किये गये अनीष्टों को।
३—अपने स्वजनों के अपराध एवं दोषों को तथा
४—दिये गये दान को।

'सरल प्रकृति आप जानिये करुनानिधान की।
निज गुन, अरिकृत अनहितौ, दास दोप
सुरति चित रहत न दिये दान की।
वानि विसारनसील है मानद अमान की ॥
—श्रीविनय ४२। २, ३

ऋषिपत्नि अहल्या जी चाहे जैसी भी थीं, थीं तो ब्राह्मणी ही। ब्राह्मणी को चरण स्पर्श कराना धर्मशास्त्र से वर्जित है।

पादमुद्यम्य यो मर्त्यः स्पृशेद् गाश्च सुदुर्मतिः।
ब्रह्मणं वा महाभागं दीप्तमानं तथाऽनलम् ॥
तस्य दोषान्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥
महा० अनु० १२६।२६।३२

अर्थात् जो पैर से गाय, ब्राह्मण, और प्रदीप्त अग्नि को छूता है उसके दोष सुनो"""इत्यादि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप उनसे कहेंगे प्रभो ! उपर्युक्त महाभारतोक्त निषेध वचन तो मरणधर्मा मानव के लिये है, आप तो परतम ब्रह्म हैं । आप इन मानवोचित विधि निषेध से परे हैं ।

तो इसका जवाब सुनिये । तुम्हें जो मानना है, मुझे माना करो, किन्तु मैं तो अपने को एक सामान्य मनुष्य ही समझता हूँ । मनुष्य ही तो किसी का बेटा होता है । मैं श्री अवधेश श्री दशरथ जी का पुत्र हूँ । मेरा नाम (श्री) राम है ।

'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।'

श्री वाल्मी० ६।११७।११

माधुर्य लीला तो नरवत् होती ही है । अतः आप अपने को क्षत्रियकुमार तथा ब्रह्मण्यदेव मान कर ऋषि पत्नि को चरण स्पर्श कराने का पश्चाताप करने लगे । आप का श्री मिथिला यात्रा वाला हर्षोल्लास इस ग्लानि से दब गया । घर से चले थे हर्ष पूर्वक—

'पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन ।'

१ । २०८

श्री विश्वामित्रजी के सिद्धाश्रम से भी श्री जनकपुर की यात्रा हर्ष पूर्वक हुई थी ।

धनुष यग्य सुनि रघुकुल नाथा । हरषि चले मुनिवर के साथा ।।

१ । २०३

किन्तु अहल्योद्धार के पश्चात् वाली यात्रा में वह हर्ष कहाँ ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'चले राम लछिमन मुनि संगा ।'...

अहल्याश्रम से चलते समय गुरुदेव श्रीविश्वामित्र से पूछा। गुरुदेव, मुझ से जो ब्राह्मणी को चरण स्पर्श कराने का अपराध हो गया, उसका प्रायश्चित् तो करा ही दीजिये। गुरु की आज्ञा से आप गंगा स्नान द्वारा प्रायश्चित करने चले।

गये जहाँ जग पावनि गंगा ।

श्रीगुरु मुख से श्रीगंगाजी महिमा सुनी। गंगा स्नान किया। ब्राह्मणों को दान दिया, तब अपने को अपराध मुक्त माना।

गाधि सुनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ।।
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। विविध दान महिदेवन्ह पाये ।।

अब गंगा स्नान से आपने अपने को अपराध मुक्त माना। फिर तो आपका श्रीजनकपुर यात्रा वाला हर्षोल्लास पुनः लौट आया।

हरषि चले मुनिवृन्द सहाया। वेगि विदेह नगर नियराया ।।

श्री जनकपुरी की रमणीयता देख, आपका वह हर्ष अनंत गुणित बढ़ गया।

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत विसेषी ।।

आपके बचे खुचे दोषों का श्री जनकपुर दर्शन से निश्शेष रूप से प्रायश्चित्त हो गया। तभी तो विशेष हर्ष हुआ। अपराधी के साथ देने वाले भी अपराध भाजन माने जाते हैं। श्रीलषनलाल जी आप इनके संगी हैं न ? कर लीजिये श्री जनकपुर दर्शन से आप भी प्रायश्चित्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्रतिम क्षान्ति

श्री राघवलला में सहनशीलता एवं क्षमा गुण ऐसे बेजोड़ हैं, जो न तो त्रिदेवों में, न अन्य किसी सगुण ब्रह्मावतार में भी देखने में आते हैं, तब सामान्य देवता एवं महामानवों की कौन कहे ? दृष्टान्त के लिये श्री जनकपुर के धनुषयज्ञ प्रसंग पर विचार कीजिये ।

श्री मिथिलेशतनया का प्रणस्वयंवर सुनकर सप्त द्वीपवती वसुन्धरा के देव, दानव, मानव सभी वर्ग के सुभट जुटे थे ।

दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । विपुल वीर आए रनधीरा ॥

—१ । २५१ ।

परन्तु श्री पिनाक किसी के लाख लाख यत्न करने पर भी अपनी जगह से टस से मस नहीं हुये ।

डगै न संभु सरासन कैसे । कामी वचन सती मनु जैसे ॥
सब नृप भये जोग उपहासी ।....

उस समाज में श्री रघुलाल जी ने अनायास धनुष तोड़ दिया ।

भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल ॥
सुनि सरोष भृगु नायक आये ।....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहस्रबाहु को परास्त कर, श्रीपरशुराम जी अपने को त्रैलोक्य विजयी मान बैठे थे । श्री रघुलाल जी को अभिमानी व्यक्ति क्या जाने ? इनके द्वारा धनुष भंग सुन कर, इनके परोत्कर्ष असहिष्णु स्वभाव में मात्सर्य जन्य क्रोध भभक उठा ।

अति रिस बोले वचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा ।।

श्रीविदेह जी महाराज रंग में भंग देख कर तो अवाक् रह गये, किन्तु रघुवंशी निर्भीक वीर श्री लषनलाल जी किसी से दबने वाले थोड़े थे। व्यंग वचनों के द्वारा, उनके साथ वाक् युद्ध करने लगे ।

लखन उतर आहुति सरिस, भृगवर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुल भानु ।।

श्री राघवलाल जू के सौम्य स्वभाव का अनुचित लाभ उठा कर, श्री लषनलाल जी से वचन में परास्त परसुधर जी बरस पड़े आप ही पर ।

परशुराम जी को क्या पता था, कि श्रीरघुवीर वह हैं-

जाके बल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।।
५ । २१ । ५

भृगुनायक जी आप भी तो अपना बल उन्हीं रघुनायक से पाये हो । उल्टे उन्हीं को ताव देखाने चले । परन्तु शौर्य बल से दर्पित व्यक्ति सुनता किसकी है ? बरसते जा रहे हैं-

भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहु जीति जग ठाढ़ा ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलिहारी श्रीराघव सहनशीलता की! आप उल्टे उनसे अपना ही अपराध क्षमा कराने लगे—

"सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे॥"

श्रीलषनलालजी की ओर से भी क्षमा याचना आप ही कर रहे हैं।

नाम जान पै तुमहि न चीन्हा। बंस सुभाय उतर तेहि दीन्हा॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी॥

दंड देने की सामर्थ्य रखते हुये, कौन इतना बर्दाश्त करेगा जी? जब श्रीपरशुरामजी ने आपके गूढ़ार्थ गर्भित बचन से आपके प्रभाव को जाना और आपको पहचाना, तो पानी-पानी हो गये। क्षमा प्रार्थना करने लगे।—

अनुचित बहुत कहेउ अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।
कहि जयजय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गयेउ बनहि तप हेतू॥

देखा न आप ने श्री राघवलाल के क्षमाशील स्वभाव को? ढूढ़ आइये ऐसे सहिष्णु और क्षमाशील। कहीं मिले तो कहियेगा।

शील सनेह निर्वाह

शील सनेह निर्वाह के विषय में तो आप के सखा गण साक्षी हैं ही। यथा राज्याभिषेक के समारम्भ जानकर—

"प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहि सुमंगल चार।
एक प्रविसहि एक निर्गमहि, भीर भूप दरबार॥
बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच रामपहि जाहीं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु आदरहि प्रेम पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परस्पर राम बड़ाई॥
को रघुवीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनि हारा॥

आपके प्रेमी किसी अवस्था विशेप में, परिस्थिति परवश थोड़े समय के लिये, आपके प्रतिकूल भी हो जायँ, तौभी आप उनसे पूर्ववत् अनुकूल समय वाला ही शील सनेह अपनी ओर से निवाहते हैं। इसके दृष्टान्त में आपके आदरणीय पिता श्रीकौशलेशजी महाराज हैं और इनसे भी बढ़कर प्रतिकूल बनने वाली आपकी विमाता श्री कैकई जी।

कह्यौ वन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ।

श्रीचक्रवर्तीजी महाराज ने इधर मंत्रियों को आदेश दिया।

"कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, वेगि करहु सोइ सोइ॥"

उधर कुलगुरु श्रीवसिष्टजी द्वारा श्री रघुलाल जी को राज्याभिषेक अवसर वाले संयम करने के वहाने इन्हें राज्य देने की सूचना दी।

"तब नर नाह वसिष्ट बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए॥"

श्री गुरुदेव ने आपके रनिवास में पधार कर आपको खबर दी कि—

"भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुवराजू॥
राम करहु सब संजम आजू॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रसंग में यह भी देख लेना है कि आप अपने गुरुदेव का कितना सम्मान करते हैं।

'गुर आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ नाथा॥
सादर अरध देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाई॥

सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंसबंस अवतंस॥

परतम ब्रह्म होकर, एक सामान्य जीव को अपने गुरु पद प्रतिष्ठित करना, इन्हें अपना प्रभु, स्वामि आदि शब्दों से संबोधन करना। उनका अपने घर पर आने में भी अपनी ठिढाई मान लेना। गुरु आज्ञा अक्षरशः पालन करने को सदैव समुद्यत रहना। शील सनेह का हद हो गया। तभी तो श्रीगुरुजी के मुख से आपके शील स्वभावसूचक उद्गार निकल ही पड़े—

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
बन दिये नारि वस गरिगलानि गये राऊ·········।

श्री कौशलेश जी महाराज ने अपने मुख से कहा है—मेरा मानसिक पश्चात्ताप तो मरने पर भी नहीं मिटने को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री राघवलाल को राज्य देने का बचन दे दिया था ! स्त्री के परतन्त्र होकर, मैंने उसी मुख से उन्हें वन जाने की आज्ञा दे दी । बलिहारी है, मेरे सपूतलाल की ! मेरी आज्ञा और विमाता की सम्मति मान कर, आज्ञा पालन में उनको चौगुना उत्साह देखा ! ऐसे सपूत के शील स्वभाव को देख कर हृदय को अनाड़ के फाँक के समान फट जाना था । हाय रे ब्रज हृदय !! फटा भी नहीं ।

'मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताऊ ।
नारि वस न बिचारि कीन्हो काज सोचत राऊ ॥
तिलक को बोल्यो, दियो वन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाडिम ज्यों न बिदर्यो, समुझि सील सुभाऊ ॥'

श्रीगीतावली २ । ५७ ।

इस सम्बन्ध में एक बात विचारणीय है:—श्रीचक्रवर्ती जी तो आपको राज्य देने को कह कर बदल गये । वन को भेजा । उस पिता पर आपका पितृस्नेह घटा तो नहीं ? नहीं जी, श्रीचक्रवर्ती जी महाराज का सत्य प्रेम सर्वज्ञ शिरोमणि रघुलाल जी से छिपा नहीं था ।

जानत प्रीति रीति रघुराई''''
प्रेम कनोड़ों राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई ।

जब श्रीराघव जी ने वन में सुना कि पिता जी ने मेरे ही वियोग में प्राण त्यागे हैं, तब तो आपके करुण रोदन की जो मार्मिक दशा हुई वह आप वाल्मीकीय रामायण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री अयोध्या काण्ड के एक सौ तीन अध्याय वाले श्लोक १-१६ तक पढ़ें। विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा गया। आपके पितृस्नेह का अनुमान इतने ही श्रीमुख वचन से हो जाता है।

निज कर खाल खैंचि या तनु ते जौ पितु पग पानही करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके वचन मेटि पति पावौं॥

श्रीगीतावली २। ७२। २

ताकुमातु की मन.......... । हमारे श्री राघवलाल जू को अपनी जननी श्री कौसल्या अम्बा से भी अधिक मातृ स्नेह था, मँझली अम्बा श्री कैकेई जी में। यह मँझली अम्बा स्वयं श्रीमुख से कहती हैं—

कौसल्या राम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी।
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥

२। १५। ६

श्री रघुकुलमणिजी को अपनी जननी से शैशवावस्था में यही उपदेश मिला था। जब आप घुटुवरन चलते चलते अपनी जननी श्री कौसल्या अम्बा के समीप जाकर मैया मैया का सम्बोधन करते थे, तो अम्बा जी कहती थीं मैं तुम्हारी मैया नहीं हूँ। आप पूछते 'तब तुम किसकी मैया हो? अम्बा जी कहती -मैं तो श्री भरतलाल की मैया हूँ। आप पुनः पूछते-तब मेरी अम्बा है कौन? श्री अम्बा जी आपको सिखाती थीं-भैया, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, तुम्हारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैया तो श्री कैकई जी हैं-तभी से आप मन क्रम वाणी के द्वारा श्री कैकई जी को कभी विमाता नहीं माना। सदा सगी मा के समान उनसे बर्ताव करते थे।

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्रा जू सों,
मैं लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यो सेई है।
कहै मोहि मैया, कहौं मैं न मैया, भरत की
बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है॥
तुलसी सरल भायँ रघुरायँ माय मानी
काय–मन--बानी हू न जानी कै मतेई है॥

श्रीकवितावली ७/३

विवेच्य पद में कवि ने 'कुमातु' शब्द का प्रयोग इस लिये किया है कि इस श्री रघुवीर वन प्रेषण कार्य के लिये मँझली अम्बा की अधिकांश लोगों ने भर्त्सना की है--स्वयं श्री कौशलेश जी—

सुवस वसहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥
जब लगि जिऔ कहउँ बरजोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी
फिरि पछितैहहि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥

श्री अयोध्या बासी--

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाठ धरि ठाटा॥
सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिल पनु ठाना॥
श्री भरतलाल जी—

हँसबंसु दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ॥

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ॥
बर मागत मन भइ नहि पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा॥
श्री निषादराज—

कैकय नंदिनि मंदमति कठिन कुटिल पनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुख दीन्ह॥

भइ दिनकर कुल विटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब विस्व दुखारी

यह तो हुई औरों की बात, किन्तु श्रीजानकी जीवन की तो बात ही भिन्न है। आप पूर्व की अपेक्षा इनमें अधिकाधिक मातृ स्नेह बढ़ाते ही गये। हम पाठकों के तुलनात्मक अध्ययन के निमित्त निम्नोद्धृत संवाद रखते हैं। आप एक तरफ तो श्री कैकेयी अम्बा जी की निठुराई देखिये, दूसरी ओर श्री रघुलाल जू के कुमाता प्रति शील सनेह का निर्वाह।

श्रीकैकेई—

सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम पर बहुत सनेहू॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देन कहेन्हि मोहि दुइ वरदाना। मागेउ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहि तुम्हार संकोचू॥
सुत सनेहु इत वचन उत, संकट परेउ नरेस।
सकहु त आयस धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेस॥
निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान वचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुष विद्या वर वीरू॥
सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥

इधर श्री रघुवंश विभूषण जू को देखिये--

मन मुसुकाइ भानु कुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू॥
बोले वचन विगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितुमातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
मुनिजन मिलन विसेषि वन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥
भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। विधि सब विधि मोहि सम्मुख आजू

ऊपर के उद्धरण में श्री राघवलाल विमाता को जननी संबोधन दे रहे हैं। जननी अपने गर्भ से जन्म देने वाली मा को ही कहते हैं।

सीय सकुच वस उतरू न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा। सील सनेह न छाड़हि भीरा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहहि न काऊ।।
अस विचारि सोइ करहु जो भावा।"

श्री कैकेई जी द्वारा श्री राघवलाल जी को प्राण प्रिय स्वजनों के बीच बल्कल धारण कराने से सभी मर्माहत थे। श्रीकौशलेशजी को तो "भूपहि वचन बान सम लागे।।"

परन्तु वलिहारी है शील सनेह निबाहवारे की!

"राम जननि सिख सुनि सुख पावा।।"

श्रीभरतलालजी परिजन पुरजनों के सहित जब श्रीचित्रकूट अपने सेव्य अग्रज से मिलने जाते हैं, उस समय—

"प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई।।"

जिसे सदा से ही अपनी जननी मानते आये, उन कैकेई अम्बा के मन में किसी प्रकार का खेद नहीं हो, अतः उन्हें विशेष लज्जित देख कर, आपने अपने वन में आगमन का दोष काल, कर्म और विधाता के मत्थे पर मढ़ कर, श्रीअम्बा जी को बिल्कुल निर्दोष बताया।

पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल करम विधि सिरधरि खोरी

श्रीचित्रकूट से विदा करने के समय सब माताओं से अधिक उन्हीं का सम्मान किया—

"भरत मात पद वंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि।।"२, २१६।।

वन से लौटने पर—

प्रभु जानी कैकेई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभरतलालजी जब श्रीचित्रकूट में अपनी माता श्री कैकेई जी के दोष के साथ मिला कर, अपना अपराध बताने लगे, तो उन्हें फटकारते हुये श्रीराघव जीने कहा—

दोसु देहि जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहि सेई॥
२/२६३

श्रीचित्रकूट से विदा करते हुये श्री भरतलाल जी को आपने उपदेश दिया कि मझली अम्बा ने किसी कामना के निमित्त, अथवा लोभ में पड़कर, तुम्हारे लिये जो कुछ किया है, उसको मन में न लाना और उनके प्रति वैसा ही बर्ताव करना, जैसा अपनी पूजनीया माता के प्रति करना चाहिये।

"कामाद् वा तात लोभाद् वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्त्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्॥"
वाल्मी २/११२/१९

किन्तु श्रीभरतलालजी के अपने प्रति गूढ़ प्रेम को आप जानते थे। अतः आप को उनके द्वारा श्रीकैकेई अम्बा के प्रति सद्भाव की आशा नहीं थी। अतः श्रीशत्रुघ्न कुमार को अपनी तथा श्रीमैथिलीजी की शपथ धराकर, श्रीकैकेई अम्बा को समादर करने की आज्ञा दी और कहा उन पर क्रोध कभी मत करना—

"शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोसि····॥"
बाल्मी २/११२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लंका विजय के पश्चात् श्रीचक्रवर्ती जी महाराज अपने सूक्ष्म शरीर से देवलोक से आप से मिलने आये। उस अवसर पर आपने उनसे प्रार्थना की कि पिता जी आप श्री कैकेयी जी तथा श्रीभरत जी पर प्रसन्न होइये। और आपने श्रीकैकेईजी को जो श्राप दिया कि 'मैं पुत्र सहित तेरा त्याग करता हूँ, सो श्राप उनके लिये यथार्थ न होवे—

कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्य भरतस्य च।
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया॥
स शापः कैकयीं घोर सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो।

वाल्मी० ६/११६/२५,२६

कहने का तात्पर्य यह है कि आप श्रीकैकेयी अम्बा का अपनी ओर से सदा मनुहार करते रहते थे तथा औरों से भी उनको समादार दिलाने के यत्न में रहते थे। यही आपके स्नेह निवाहन स्वभाव की विशेषता है। आपका स्नेही आप से भले टूट जायँ, परन्तु आप तो उनसे और भी अधिक स्नेह करते हैं, शायद यह समझते हैं कि मेरे ही स्नेहाभाव से ये मुझ से खिंच रहे हैं, अतः उनसे अधिकाधिक स्नेह बढ़ाकर इनका स्नेह पुनः पूर्ववत् बना लें। और होता भी यही है। आप से टूटने वाले, स्वयं लज्जित होकर आपके शील स्वभाव से आप पर निछावर हो जाते हैं। अरे, आपने अपने मनोरम शील स्वभाव ही से तो खग, मृग, वानर भालु को भी अपना मित्र बना लिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खग मृग मीत पुनीत किय, वनहु राम नतपाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बंधु कियो काल ।।
दो० ४४२

कृतज्ञता

आपका मनभावन कृतज्ञ स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि कभी कोई एक बार भी आपकी छोटी सी सेवा कर देता, तो आप उसकी एक ही सेवा से सदा संतुष्ट रहते, तथा मनस्वी होने के कारण, उस सेवक के द्वारा पीछे सैकड़ों अपराध होने पर भी उन अपराधों को उसी समय ऐसे भूल जाते कि फिर कभी याद नहीं आवे—

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ।।
श्रीवाल्मी० २/१/११

श्री हनुमतलाल जी की तो बात ही सर्वतोभावेन विलक्षण है । ज्ञानियों में अग्रगण्य, बुद्धिमानों में वरिष्ठ, सकल कल्याण गुणगण निधान श्री हनुमान जी से भला कोई अपराध कभी संभव है? आपके जीवन का मुख्यव्रत है श्री जानकी वल्लभलाल जू की अहर्निश सेवा। सतत सेवा परायण रहना आपका स्वभाव है। तो फिर, आपके प्रति राघवलाल जी कृतज्ञ हुये तो क्या आश्चर्य ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री हनुमतलाल जी रावण की अशोक वाटिका को तहस नहस करके, उसके पुत्र तथा अनेकों सेनापतियों को मार कर, रावण सभा की पूरी जासूसी लेकर, लंका जलाकर, तथा श्रीवैदेही के समाचार लेकर, श्री राघवलाल जू के सम्मुख दीन भाव से भय पूर्वक हाथ जोड़े कुछ दूर पर खड़े हैं। उस समय श्रीमुख से उनकी कृतज्ञता इन शब्दों में बखान कर रहे हैं—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम् ।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥

श्रीवाल्मीकी० ६/१/२

अर्थात् श्री हनुमान जी ने महान कार्य किया है। भूतल पर ऐसा कार्य होना कठिन है। इस भूमंडल में दूसरा कोई ऐसा क्लिष्ट कर्म करने की बात मन के द्वारा सोच भी नहीं सकता।

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेना धर्मतः परिरक्षिताः ॥

श्रीवाल्मी० ६/१/११

आज श्री हनुमान जी ने श्री विदेहनन्दिनी जू का पता लगाकर तथा उन्हें अपनी आँखों से देख कर, धर्म के अनुसार मेरी, समस्त रघुवंश की, तथा महाबली श्री लषनलाल जी की भी रक्षा कर ली है। उस अवसर पर श्रीहनुमतलालजू की कृतज्ञता ज्ञापन करते हुये श्रीमुख वचन हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरनि मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अतिगाता
५/३२/५-८

श्रीलषनलाल जी के लंका युद्ध में मूर्च्छित होने पर, द्रोणाचल से रातोंरात संजीवनी लाकर. इन्हें पुनः जीवत कराया। तब तो श्रीराघव जी ने कृतज्ञता ज्ञापन का हद ही कर दिया--श्री हनुमान, तुम्हारे इन अप्रतिम उपकारों में किसी एक दो उपकार के बदले अपना प्राण दान कर दूँ तो थोड़ा है, फिर तो शेष उपकारों के बदले ऋणी ही रहूँगा तुम्हारा। तुमने हमारी आपत्तियों में उपकार किया है। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी देह में कभी आपत्ति ही न आवे। उपकार हमारे शरीर ही में जीर्ण हो जायँ।

एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे।
प्रत्यक्षं क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम्॥ ३५॥
अङ्गेष्वेव जरां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
भवान्प्रत्युपकारार्थमापत्सु लभतां पदम्॥ ३६॥
श्रीहनुमान्नाटक अंक १२।

कपि सेवा बस भए कनौड़े............

इस प्रकार कह कर, श्रीहनुमान जी को अपने सन्निकट बुलाकर कहा मैं ऋणी, तुम धनी, मुझ से ऋण शोध होना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कठिन है। मुझ से ऋणपत्र लिखा लो। जब कभी मैं भूल जाउँ तो इसे दिखा कर, मुझसे जो भी प्रत्युकार कराना चाहो, करता रहूँगा।

तेरो रिनी हौं कह्यौ कपि सौं, ऐसी मानिहि को सेवकाई॥

श्रीविनय १६४/६

स्वजन सम्मान



अपनायो सुग्रीव विभाषन...............

राम सुकुंठ विभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥

श्री सुग्रीव जी ने प्रतिज्ञा की थी कि-

उपजा ज्ञान वचन तब बोला। राम कृपा मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥

परन्तु श्री सुग्रीव जी किष्किधा का राज्य पाकर, तथा अपनी पत्नी रूमा एवं अग्रज पत्नी तारा में ऐसे आसक्त हो गये कि चार महीने तक सन्निकट के प्रवर्षण पर्वत पर अपने विपत्ति भंजक मित्र की खोज भी नहीं करने आये कि क्या आपकी आवश्यक सेवा उनके द्वारा संभव है ? उनकी उपेक्षा से ऊब कर, श्री रघुलाल जू को कहना पड़ा--

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोष पुर नारी॥

यह छल तो हुआ श्रीसुग्रीव का।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री बिभीषण जी ने भी अपने को वासना शून्य बताया था--

उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

फिर भी यह गुरुतर अपराध मातृ तुल्य भाभी मंदोदरी को अपनी पत्नी बनाने जैसे निन्द्य कर्म तो आप से हो ही गया। इसी से तो कहा गया कि-

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिर सुकुंठ सोइ कीन्ह कुचाली
सोइ करतूत बिभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी॥
बालि सो बीरु बिदारि सुकंठ, थप्यो हरषे सुर, बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथीं दसकंधरु लंक बिभीषनु राज बिराजे॥
राम सुभाउ सुनें तुलसी हुलसै अलसी हम से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन के हद तेऊ गरीब नेवाज नेवाजे॥

श्रीकवि० ७/१

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि
सखा किए महाराज! हो न काहू काम को।
भ्रात घात पातकी निसाचर सरन आएँ
कियो अङ्गीकार नाथ एते बड़े बाम को॥
राय दसरत्थ के! समर्थ तेरे नाम लिएँ
तुलसी से कूर को कहत जगु राम को।
आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को
सुभाउ समुझत मन मुदित गुलाम को॥

श्रीकवि० ७/१४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरत सभा सनमानि सराहत······

श्री भरतलाल जी कितने महान हैं--निम्मोद्धृत अर्धा-क्तियों से अनुमान कर लीजिये--

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥
भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

ऐसे श्रीभरतलाल जी के सामने प्रशंसा उसी की होनी चाहिये जो आप से भी महान हो। श्रीभरतलालजी की सभा में सम्मान एवं प्रशंसा का दूसरा क्या अर्थ होगा?

हम सरकार से पूछें--प्रभो, श्रीसुग्रीव तथा श्रीविभी-षण आपही के तुल्य श्री भरतलाल जी से किस बात में अधिक हैं? आप कहते हैं--तुम क्या जानो? श्रीभरत ने तो केवल हमारे राज्य एवं कोष की रक्षा की है। और इन ने तो हमारे प्राणों की रक्षा की है--

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे॥
ममहित लागि जनम इन हारे। भरतहु तें मोहि अधिक पियारे

होत न हृदय अघाउ······

श्री सुग्रीव, श्री विभीषण जी का जो सम्मान आपके द्वारा हुआ है, वह प्रसंग अनुकूल हम पीछे लिखेंगे। अभी इतना ही कहना है कि इनकी प्रशंसा करते करते आपको तृप्ति नहीं होती।

प्रसंग इन सभी वानर बन्धुओं को विदा करने कालका है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु वचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुखपर केहि विधि करौं बड़ाई
ताते मोहि तुम्ह अतिप्रिय लागे। ममहित लगि भवन सुख त्यागे
अनुज राज संपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सम ममप्रिय नहि तुम्हहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह वाना॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दासु पर प्रीती॥

हद्द हो गया! अपने श्रीविग्रह, श्री वैदेही जी, मातृ वृन्द, तथा समस्त परिवार से भी इन पर अधिक प्रियत्व श्रीमुख से कहा जा रहा है और कहा जा रहा है सत्य की दुहाई देकर। आपकी प्रीति रीति को हम जैसे प्रेम गँवार क्या समझेगा? हो सकता है आपने विचारा हो कि अपने घर के स्वजन परिजन से तो शारीरिक सम्बन्ध है, इनका मुझ में प्रेम होना सहज संभव हैं, परन्तु ये विजातीय सज्जन तो किसी प्रकार की हम से नातेदारी नहीं रखते। फिर भी अपने प्राणों की बाजी लगा कर, युद्ध में मेरी सहायता की है। अतः इनका सम्बन्ध तो कोरा सनेह का ही है।

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब होत करि राखत, राम सनेह सगाई॥

अतः इन वानर बन्धुओं के विशुद्ध सनेह सम्बन्ध को अपने परिजन सम्बन्ध से अधिक महत्व दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आरति हरण शरण सुखद स्वभाव



करुणानिधान श्री जानकी जीवन जान जू का हृदय नवनीत से भी कोटि गुणा कोमल है।

अति कोमल रघुवीर सुभाऊ ।
जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥

आप आर्तजनों की पुकार सुनकर, ऐसे करुणार्द्र हो उठते हैं कि आप शीघ्रातिशीघ्र उनके संकट निवारण के लिये अत्यन्त व्यग्र हो जाते हैं ।

कपि सुग्रीव बंधु भय व्याकुल आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जन के, हत्यो बालि सहिगारी ॥

श्रीविनय १६६/७

उसी प्रकार श्री विभीषण जी की पुकार सुनते ही—

करुनाकर की करुना भई...
'मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ, काहू सो न खुनिस खई ।'

श्रीगीतावली ५/३७

श्री विश्वामित्र जी राक्षसों द्वारा यज्ञ विध्वंसित होने पर अत्यन्त दुखी थे । श्रीअहल्या की शोक कथा पर विचार कीजिये । श्रीमिथिलेश जी महाराज धनुष प्रण पूर्ति में संदेह होने पर कितने व्याकुल हो गये थे ? आपने इन सबों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संकट किस चतुराई से साथ मिटाये। ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, आपके संकट निवारण के।

परन्तु आपका स्वभाव है अत्यन्त संकोची। ऐसे घोर संकट के समय आपके किये हुये उपकार की सर्वत्र प्रशंसा होती रहती है और है भी प्रशंसा योग्य। परन्तु वाह रे संकोची स्वभाव! आप अपने मन में उन महान उपकारों की कोई कीमत ही नहीं मानते। सोचते हैं ये लोग क्यों मेरी प्रशंसा के इतने बड़े पुल बाँध रहे हैं। भला, यह भी कोई उपकार है? मैंने किया ही क्या उसके लिये? आप शरणागतों के रजकण समान तुच्छ गुण को महान पर्वताकार मान लेते हैं, और अपने सुमेरु सम उपकारों को तृण वत् तुच्छ समझते हैं।

जन गुन रज गिरिगनि सकुचत निज गुन गिरि रज परमानुहै॥
श्रीगीतावली ५/३५

कितनी शरणागति सुलभ है आपकी। केवल एक बार साष्टाँग प्रमाण करके, अपना कष्ट निवेदन कर दी। हो गई शरणागति। मानसिक, वाचिक, एवं कायिक त्रिविध शरणागति, आनुकूल्यादि संकल्पः इत्यादि षट् विधि शरणागति के अंगों को पूरा कर शरणापन्न होने की यहाँ आवश्यकता नहीं। आरत संकट निवारण के लिये त्वरित एवं समाकुल चित्त श्री रघुलाल जू को इतना कहाँ अवकाश कि आप प्रपन्न जनों के शरणागति धर्म के सूक्ष्म अङ्गों पर विवेचन करने जायँ? इसी से तो कहा गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

99:4NSS
152M1

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो
श्री रघुपति सम बिपति बिदारन ।
काको सहज सुभाउ सेवक बस
काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥

श्रीविनय २०६

हाँ, तो केवल एक ही बार प्रणाम कर लेने वालों को अपना शरणापन्न मान लेते हैं—उसके सुयश का गान करने लगते हैं, कोई और उसके सुयश का गान करने वाला हुआ, तो बड़े दत्तचित्त से उसे सुनते हैं। तथा सुन लेने पर पुनः आग्रह करते हैं कि फिर से शरणागत का सुयश सुनाओ, और बारम्बार सुनाते ही रहो। सुनते सुनते तृप्ति नहीं होती।

स्वभाव चिन्तन से दिव्य प्रेम



सुमिरि सुमिरि गुन ग्राम राम के—

श्रीराघवलाल जी के जितने गुण गण हैं, सभी स्वभाव सिद्ध हैं। आपके सहज स्वभाव के अन्तर्गत आपके सभी गुणों का समावेश हो जाता है। आपके गुण गणों का चिंतन, चिन्तामणि एवं कल्प वृक्ष के समान सभी लौकिक पार लौकिक मनोरथों को सद्यः सिद्ध करने वाले हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।

चिंतामनि गुन ग्राम राम के। दानि मुकुत धन धरम धामके॥
अभिमत दानि देवतरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥

उर अनुराग बढ़ाउँ—

सबसे बड़ा लाभ तो है कि आपका स्वभाव चिन्तन श्रीसीताराम प्रेम को प्रगट करने वाले माता पिता बन जाते हैं—

जननि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के॥

यहाँ सुमिरि सुमिरि दो बार कहने का तात्पर्य यह है, इन्हें बारम्वार स्मरण चिन्तन करते रहना चाहिये।

तुलसिदास अनयास राम पद···प्रेम पसाउ।

श्री स्वामिपाद का आश्वासन वचन है कि श्रीराघव प्राणेश के मनोज्ञ पादारविन्द में प्रेम का प्रसाद अर्थात् कृपाजन्य प्रेम, स्वभावचिन्तन से अनायास प्राप्त होगा। प्राप्ति के लिये सदीर्घकालीन श्रमसाध्य साधन करने की अपेक्षा नहीं पड़ेगी।

अब हम श्रीगोस्वामिपाद विरचित श्रीविनय पत्रिका के दो सौ पन्द्रह संख्यक पद के आधार पर श्रीप्राण संजीवन श्री जानकीरमण जू के सुमधुर स्वभाव पर विचार करेंगे। प्रस्तुत पद इस प्रकार पठित हैं—

'श्री रघुबीर की यह बानि।
नीचहू सों करत नेह, सुप्रीति मन अनुमानि॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ।
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों, प्रेम को पहिचानि ॥
गीध कौन दयालु, जो विधि रच्यो हिंसा सानि ।
जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि ॥
प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥
रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह दसा भुलानि ॥
कौन सुभग सुसील बानर, जिनहिं सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥
राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥

❀ श्रीराघव जू का प्रेम रिझवार स्वभाव ❀



स्नेह सिन्धु श्रीरघुलाल सलोने जू का स्नेहशील स्वभाव जगत्प्रसिद्ध है। आप स्नेह रस के ऐसे बुभुक्षु हैं कि सच्चा स्नेह तो दूर रहे, कहीं किसी व्यक्ति में स्नेहाभास, नकली स्नेह भी देख लेते हैं तो उस पर लट्टू हो जाते हैं।

आपके स्नेह का विषयालंबन चाहे नीच से नीच प्राणी भी क्यों न हो, तो भी पात्रापात्र का विचार किये बिना ही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप उसके साथ चिपट जाते हैं। इस उपर्युक्त उद्धरण के 'सुप्रीति मन अनुमानि' वाक्य खंड में अनुमानि शब्द का तात्पर्य कि स्नेहाभास को भी परमोत्तम (सु) प्रीति मान लेते हैं। पाठक उस नकली सनेही के स्नेह को भले बनावटी कह लें, किन्तु उनका तो निश्चय है कि यह सच्चा ही है, कच्चा हो नहीं सकता।

तुलसी झूठे भगत की पत राखत भगवान।
ज्यों मूरख उपरोहितहि, दान देत जजुमान॥

श्रीरघुलाल मनरंजन जू सर्वज्ञ होते हुये भी माधुर्य लीला देश में बड़े ही भोले भाले हैं। नौ छौ कुछ नहीं जानते। जैसे चाहो इन्हें छल लो। कह दो, मैं आपका बड़ा प्रेमी हूँ, मान लेंगे, बिल्कुल सही है।

लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥

श्रीमानस २/७४/५,६

गोस्वामि पाद उपर्युक्त सैद्धान्तिक कथन के उदाहरण स्वरूप चार, पाँच श्रीरामसनेहियों के नाम गिनाते हैं।

सर्व प्रथम आप गुह निषाद राज की जाति पाँति पर ही विचार कीजिये। देवता लोग उनकी हीनता बताये हुये कहते हैं—

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
यहि तो राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेतु जगु पावन कीन्हा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करमनास जलु सरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहि धरई।।

श्रीनिषादराज को प्रस्तुत पद में परम अधम कहा है। अन्त्यज कुल में उत्पन्न होने के कारण, दुष्टातिदुष्ट स्वभाव के थे। पाँवर से कर्मतः खोटे कहे गये। समाज में उन्हें कोई भी प्रतिष्ठा (कान्ति) नहीं प्राप्त थी। फिर भी प्रेम पारखी श्रीराघव जू ने इनके हृदय को देखा, और देखा उसमें दिव्य प्रेम की छींटें। वश क्या था, चिपक गये उससे। उसे सुत के समान अपने हृदय से चिपका लिया। तात्पर्य कि उसके प्रति वात्सल्य भाव दरशा कर, उसके समस्त दोषों को इस प्रकार मिटा दिया जैसे गौ अपने नवजात बछड़े को जीभ से चाट कर, विशुद्ध बना लेती है। दूसरा उदाहरण श्रीजटायूजी का है। आप मांसभक्षी पक्षी जातीय स्वभाव से दया रहित थे।

दया में वसत देव सकल धरम (पद २४९)।

अतः सर्व धर्म रहित समझिये, इनको।

विधि रच्यो हिंसा सानि…

इनके पूर्वजन्म कृत मलिन कर्मके कारण ही तो विधाता ने इन्हें हिंसाप्रिय पक्षी जाति में जन्म दिया था।

हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहि कौन मिति।

—श्रीमानस १/१८३

अतः इन्हें अनन्त पातक लगे थे। ऐसे नीच प्राणी के हृदय में आपने दिव्य प्रेम की देखी झलक। तब तो आपने इनसे पिता का नाता जोड़ लिया। इनके मरने पर, अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करकंज से इनकी अन्त्योष्टि करके, इनके नाम पर जलांजलि दी।

जेहि कर कमल कृपाल गीध कहँ उदक देइ निज लोक दियो।

—श्रीविनय १३३/३

इतना ही नहीं, उन्हें अपने परम स्नेही पिता से भी अधिक गौरव दिया।

नेह नेत्राहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर, ममता गुन गरुआई॥

श्रीकवि० १६४/२

तीसरे उदाहरण में श्रीशबरीजी का व्यौरा कुशल कवि की यथार्थ लेखनी से पढ़िये। श्रीशबरीजी की जातीय नीचता बताते हुये कहते हैं कि—

जाति हीन अघ जन्म महि (मुक्त कीन्ह असि नारि) थी।

श्रीमानस ३/३६

प्रकृति मलिनता अपने मुख से श्रीशबरीजी स्वयं कहती हैं—
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जातिमैं जड़मति भारी
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँमैं मतिमंद अघारी

श्रीमानस ३/३५/२,३

ऐसी शबरीजी के दिये हुये फलों को आप बड़ी ही रुचि से खा रहे हैं। तथा उसके स्वाद की भी सराहना करते जाते हैं। उनके रूखे सूखे नीरस फलों में कोई वस्तुगत स्वाद नहीं था। आप तो उसमें सने हुये प्रेम रस का स्वाद ले रहे थे। उन फलों के स्वाद की सराहना हद तक तब पहुँची जब-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भइ जब जब पहुँनाई।
तब तब कहँ सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई ॥
श्रीविनय १६४

चौथे उदाहरण में आते हैं श्रीविभीषणजी। श्रीविभीषणजी जाति के राक्षस थे। आप अपने ही मुख से कहते हैं।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुर त्राता॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

शत्रु रावण के भाई होने के नाते ये भी शत्रु ही कोटि में गिने जा सकते थे। और श्रीरघुवीर जू ने प्रतिज्ञा कर रखी थी—

निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
श्रीमानस ३/६

अतः राक्षसों के साथ साथ विभीषणजी भी वध्य थे। परन्तु थे शरणापन्न। शरणागतों में अपने शरण्य के प्रति श्रद्धा, विश्वास, सद्भावना युक्त स्नेहांश का होना अनिवार्य है। अतः उनके हृदयगत स्नेह कणों को देख, सनेह रिझवार जी उन पर ऐसे अनुरक्त हो गये कि श्रीभरतलालजी के समान ही उनसे मिले। श्रीभरतलालजी से मिलने के समय आपको
'राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥'
श्रीमानस ७/५

उसी भाँति श्री विभीषणजी से मिले श्रीबिभीषण को प्रणाम करते देखा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उठे उमंगि आनन्द प्रेम परिपूरन विरद विचारि कै ॥
भये विदेह विभीषन उत इत प्रभु अपनपौ विसारिकै।
भली भाँति भावतें भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारिकै ॥

श्रीगीता ५/३६/१,७

पाँचवे उदाहरण में आप पुष्पक विमान में लंका के साथ साथ आये हुये वानरों की बात लीजिये।

वानरों में न तो कोई सौन्दर्य होता है, न शील, न सौम्य स्वभाव। शील क्या होगा ? 'प्रभु तरु कपि डार पर' से ही उनका शील समझ लीजिये।

इन वानरों की जाति तो ऐसी कुलक्षण होती है कि—

असुभ होइ जिन्ह के सुमिरे ते वानर रीछ विकारी।

श्रीविनय १६६

ऐसे वानरों में आपने देखा प्रेम। इतना प्रेम कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर, आपकी कार्य साधना के लिये रणांगन में निशंक कूद पड़े।

किये ते सब सखा—

इन्हें श्रीमुख से सखा की उपाधि दी है—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहुतें मोहि अधिक पियारे॥

श्रीसुग्रीवजी को तो श्रीभरतलालजी ने अपना पाँचवा भाई कहा है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाब्रवीद् राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥
त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्रातः सुग्रीव पञ्चमः ।

श्रीवाल्मी० ६/१२८/४६, ४७

अर्थात् धर्मात्माओं के शिरमौर परम तेजस्वी राजकुमार श्रीभरतलालजी ने वानरराज श्रीसुग्रीव को अपने हृदय से लगाकर कहा कि हम पहले चार भाई थे, अब आपको पाकर हम पाँच भाई हुये।

श्रीनन्दी ग्राम से पुष्पक विमान को विदा कर दिया गया है। यहाँ से श्रीअयोध्या प्रवेश बड़े ठाठ बाट की शोभा यात्रा के साथ हो रहा है। श्रीराघव आगमन की सूचना गत शेष दिन में ही प्राप्त हो चुकी है। रातोंरात श्रीअयोध्या नगरी की मांगलिक सजावट हो चुकी है। गलियों में, सड़कों पर मणिमय कदली स्तंभ आरोपण, मंगल स्वर्ण कलश स्थापन हुये हैं। ठौर ठौर पर मगल चौक पूरे गये हैं। ऊपर अमोल वस्त्रों के वितान ताने गये हैं। उनमें मोती लड़ियों की झालरें लटकाई गई हैं।

राज मार्ग के उभय पार्श्व स्थिति अट्टालिकाओं पर सुहागिनि नवयुवतियाँ, आरती सजे खड़ी हैं ? पुष्प एवं, मांगलिक लाजा बरसाने को समुद्यत हैं। उसी बीच से शोभा यात्रा नृत्य गान पूर्वक, मंगल वाद्यों के दिव्य घोष के साथ, निकल रही है। जय रघुवीर धीर जू की ! जय जय सती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिरोमणि सीता महारानी जू की ! इन तुमुल निनाद से गगन मंडल मुखरित हो रहा है। श्रीसुग्रीवादि वानरों को हाथी, घोड़े, रथ आदि ऐसे राजोचित सवारियों पर, शाही सत्कार के साथ लिवाया जा रहा है, जैसी सवारी पर ये अपने बाप दादे के जमाने में भी कभी नहीं चढ़े होंगे। इस सम्बन्ध में श्रीपद्मपुराण अन्तर्गत उत्तर खंड के अध्याय दो सौ बयालिस के श्लोक ३५७ से ३६१ तक पठनीय है।

भ्रातृभिः सानुगैस्तत्र मङ्गल स्नान पूर्वकम्।
दिव्य माल्याम्बरधरो दिव्य गन्धानुलेपनः।
आरुरोह रथं दिव्यं सुमंत्राधिष्ठितं शुभम्॥
संस्तूयमानास्त्रिदशै वैदेह्या लक्ष्मणेन च।
भरतश्चैव सुग्रीवः शत्रुघ्नश्च विभीषणः।
अङ्गदश्च सुषेणश्च जाम्बवान्मारुतात्मजः।
नीलो नलश्च सुभगः शरभो गन्धमादनः॥
अन्ये च कपयः शूरा निषाधिपति गुहः।
राक्षसाश्च महावीर्याः पार्थिवेन्द्रा महाबलः॥
गजानश्वान्रथान्सम्यगारुह्य बहुशः शुभान्।
नाना मङ्गल वादित्रैः स्तुतिभिः पुष्कलै स्तथा।
ऋक्षवानर रक्षोभिर्निषादवर सैनिकैः।
प्रविवेश महातेजाः साकेतं पुरमव्ययम्॥ ३६१

अर्थात् श्रीनन्दी ग्राम में ही चारों भाई अपने लंका से समागत सखाओं के साथ मंगल स्नान करके, श्रीसाकेत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नगरी में प्रवेश कर रहे हैं। उस समय सानुग चारों भाई दिव्य वस्त्र, भूषण एवं दिव्य मालाओं से समलंकृत हैं। दिव्य गन्धों से अनुलेपित हैं । आप श्रीरघुलालजी श्रीमैथिलीजी के सहित श्री सुमंत्रजी के द्वारा सजाये गये दिव्य रथ पर विराजमान हुये। साथ-साथ श्रीलषनलालजी, श्रीभरतलालजी श्रीसुग्रीवजी, श्रीशत्रुघ्नकुमारजी, श्रीविभीषणजी, श्रीअङ्गदजी, श्रीसुषेणजी, श्री जाम्बवंतजी, श्री पवननन्दनजी, श्रीनीलजी, श्रीनलजी, श्रीशरभजी श्रीगन्धमादनजी तथा अन्यान्य वानर वीरों के साथ निषादाधिपति श्री गुहराजजी, परम शूर वीर राक्षसगण, बड़े बड़े सामन्त भूपतिगण जा रहे हैं। कोई सजे अलंकृत हाथी पर, कोई सुन्दर घोड़े पर, कोई रथ पर सुशोभित हैं । नाना प्रकार के मंगल वाद्य बज रहे हैं। सूत,मागध वन्दीगण विरुदावली का बखान करते जा रहे हैं। इस प्रकार श्रीसाकेत के सैनिकों के साथ ऋक्ष, वानर, निषादराज के परम तेजस्वी सैनिक गण अविनाशी दिव्य साकेत नगरी में प्रवेश कर रहे हैं ।

इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि पुष्पक विमान से आते समय, जब श्रीरघुलालजी किष्किधा पहुँचे, तो आपने श्रीमैथिलीजी को विचित्र वन प्रान्त से सुशोभित किष्किन्धा दिखाई । वालि पालित किष्किधा पुरी को देखकर, श्रीमैथिलीजी ने प्रेम विह्वल होकर, विनय पूर्वक कहा— प्राणेश, मैं श्री सुग्रीवजी की तारा आदि प्रिय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भार्याओं तथा अन्य वानरों की स्त्रियों को साथ लेकर, आपके संग अपनी राजधानी श्री अयोध्या को चलना चाहती हूँ। ऐसा ही हुआ भी—

एषा सा दृश्यते सीता किष्किन्धाचित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मयाहतः ॥२२॥
अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालि पालिताम् ॥२३॥
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा।
सुग्रीव प्रियभार्याभिस्तारा प्रमुखो नृप ॥२४॥
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृताह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥२५॥

—श्रीवालमी० ६/१२३

श्रीअयोध्या नगरी में पहुँचकर श्रीचक्रवर्ती दसस्यन्दन जू की सभी मनस्विनी रानियों ने स्वयं अपने हाथों से श्री-सिया जू का मनोहर शृङ्गार किया। इधर पुत्र वत्सला श्रीकौशल्या अम्बा ने अत्यन्त हर्ष और उत्साह के साथ समस्त वानर पत्नियों का अपने हाथों से शृङ्गार किया।

प्रतिकर्मा च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥१७॥
ततो वानर पत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥१८॥

श्रीवाल्मी० ६/१२८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्रवत्सला श्रीकौशल्या अम्बा ने आज अपनी खाश वहू श्रीसिया जू का शृङ्गार अपनी अन्य सपत्नियों से कर-वाया। आप का हौसिला था कि वानर पत्नियाँ भी तो हमारी ही बहू हैं। इनका शृङ्गार मैं स्वयं अपने हाथों से करूँगी। मुझे अनेक पुत्रवधुओं के लाड़ प्यार का आनन्द जो लेना है। दासियाँ अलग से शृंगार साधन हमारे हाथों में देती रहें। सच बताना वानरी वहनो, तुमने आज तक ऐसे दिव्य वस्त्र भूषण पहने थे, और अपनी मा एवं सास से ऐसा तुम्हें दुलार प्राप्त हुआ था? अरी वहनो, श्रीराघव माता है, श्रीराघव अम्बा। जगत की अन्य जननी, पुत्रों एवं पुत्र वधुओं का दुलार इनसे सीख जायें।

वानरेन्द्र श्रीसुग्रीवजी की यहाँ कैसी खातिरदारी हुई, मत पूछिये? खाश अपनी विहार वाटिका श्रीअशोक वन को, खाली करवाकर, उसी में श्री सुग्रीवजी अपनो रनवास के साथ ठहराये गये।

अथाब्रवीद्र राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम्।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥४३॥
तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्ता वौदुर्य संकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥४४॥
तस्या तद् वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः।
हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तैल प्रदीपांश्च पर्याङ्कास्तरणानि च।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥४७॥

श्रीवाल्मी० ६/१२८

अर्थात् श्रीमहाराजनन्दन रघुवंश मणि जू ने धर्मात्मा शिरोमणि श्रीभरतलालजी से अर्थयुक्त मीठी वाणी में कहा। भैया भरत, श्री अशोक वनिका के अन्तर्गत जो मेरा मोती वैदुर्य खचित परमोत्तम राजमहल है, वहाँ हमारे सुग्रीव भैया को ले जाकर ठहराओ। पूज्य अग्रज श्रीजानकी जीवन जू के आदेश से सत्यपराक्रमी श्री भरतलालजी श्री वानरेन्द्र सुग्रीवजी का हाथ पकड़कर, उस अशोक बन के राज भवन में लिवा गये। तब तक श्रीशत्रुघ्नकुमार द्वारा प्रेषित प्रकाश करने वाली मशालें तथा गद्दे से सजे पर्यंकादि सभी सुखद उपकरण लेकर सेवक गण वहाँ कपिराज की सेवा में समुपस्थित हुये। कहिये कपीन्द्रजी, आप ऋष्यमूक पर्वत वाले बचे खुचे शोकों को इस दिव्य अशोक वनिका में आकर भूल गये न? आप भी तो राजा ही हैं। है आपका किष्किन्धा में कोई ऐसा महल? ऐसा महल कभी आपने देखा सुना भी है? जिसे जन्म जन्मान्तरों में कभी कोई सुख नहीं मिला हो, वह श्री-रघुलालजी से मैत्री करके अपूर्व दिव्यानन्द का सदा सर्वदा उपभोग करता रहे। हम सच कहते हैं, सहृदय पाठक गण।

पूजे भवन अपने आनि—

ये चान्ये वानराध्याश्च ह्ययोध्यां समुपागताः।
अमूल्याभरणै वस्त्रैः पूजिता राघवेण ते ॥१५०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीव प्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।
मकरध्वज संपाति गुहकाः पार्थिवादयः ।
यथार्हं पूजितास्तेन रामेण वसनादिभिः ॥१५१॥

—श्रीआनन्द रामायण, सार कांड

प्रसंग श्रीरामराज्याभिषेक के पश्चात् का है । सभी समागतों का सम्राट स्वयं पूजन कर रहे हैं। इसके पश्चात् श्रीसाकेतपुरी में समागत अन्यान्य वानरादिकों को बहुमूल्य वस्त्र भूषणों से सत्कृत किया । श्रीअयोध्या राज्यासीन सम्राट श्रीराघवलाल जू श्रीसुग्रीव आदि कपिवरों का, श्रीविभीषण, श्रीमकरध्वज, श्रीसंपाति श्रीनिषादराज तथा अन्यान्य नृपति गणों का भी यथायोग्य पूजन किया ।

राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि—

श्रीरघुलालजी का स्वभाव ऐसा कृपामय है कि आप कृपा करने लगते हैं, तो थोड़ी कृपा से अघाते ही नहीं—

जासु कृपा नहि कृपा अघाती ।
अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥

श्रीमानस ५/५७/५

दीनों को दिनानुदिन देते रहना, आपको रुचता है । दिये बिना चैन भी तो नहीं है । करें क्या ? मजबूरी है । विश्वम्भरने कल आपको भोजन दिया था । आज दुबारे क्यों दे रहा है ? घबड़ाइये नहीं, रात भी खाने को देगा । जीवन भर कभी भूखा रहने देगा ही नहीं । क्या क्या उपकार उनका गिनायें ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कोटिहु मुख कहि जाय न प्रभु के एक एक उपकार।'
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि—

हमारे परमाचार्य श्रीगोस्वामिपाद चाहते हैं मनभावन जू आपका भजन सतत करते रहें, परन्तु बहुत चाहने पर भी भजन बनता नहीं। अतःआपही अब ऐसी कृपा करियेकि-
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिनराती

कपट करना तो हम से छूटने से रहा। यह तो जन्म जन्मन्तरों का अमिट स्वभाव बना है।

कपट करौं अंतरजामिहु सों, अघ व्यापकहि दुरावौं।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर, रघुपति न कियो मन बावौं॥

श्रीविनय १७१/३

अब अपने पुरुषार्थों का भरोसा तो रहा नहीं। निराश होकर आपकी शरण में आया हूँ। आपका शील स्वभाव अत्यन्त कोमल है। आपकी शरण में तो निश्चय हमारा जन्म जन्मान्तरों का बिगड़ा सब बन ही जायगा। कभी कभी शरणागति की बारीकी पर विचार करनेसे मालूम होता है कि वह भी हम से बनने को नहीं, तब सब ओर से हार कर,आपके सुकोमल शील स्वभाव का ही भरोसा रह जाता है।

जो करनी आपनी विचारौं तौ कि सरन हौं आवौं।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति को, सो बल मनहि दिखावौं॥

श्रीविनय १४३/१०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नामु लिए पूत को पुनीत कियो पातकीस
आरति निवारी 'प्रभु पाहि' कहें पील की।
छलिन की छोड़ी, सो निगोड़ी छोटी जातिपाँति
कीन्ही लीन आप में सुनारी भोंड़े भील की॥
तुलसीओ तारिबो, बिसारिबो न अन्त मोहि
नीके हैं प्रतीति रावरे सुभाव सील की॥

श्रीकवितावली ७/१८

अब तक हम श्रीगोस्वामिपाद लिखित श्रीराघव स्वभाव पर विवेचन करते आ रहे थे। क्योंकि आपने स्वयं कहा है कि श्रीराघव स्वभाव को हमने भी देखा है। समस्त रामचरित का मानसिक साक्षात्कार करने वाले श्रीगोस्वामीजी के लिये यह सहज संभव भी है—

बेद बिरुद्ध मही मुनि साधु ससोक किए सुरलोक उजारे।
और कहा कहौं तीय हरी तबहू करुनाकर कोह न धारो॥
सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लातु न मारो॥

श्रीकविता० ६/३

❀ महर्षि वाल्मीकि कृत स्वभाव वर्णन ❀

हमारे राघव स्वभाव विषयक श्रुत ज्ञान के दूसरे स्रोत हैं, महर्षि वाल्मीकिजी। श्रीमहर्षिपाद ने अपना सम्पूर्ण आदिकाव्य गुणात्मक ही लिखा। महर्षि द्वारा गुण गणों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्रण में श्रीराघव स्वभाव के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में हम महर्षि रचित रामायण जी के श्री अयोध्या कांड के प्रथम दो सर्गों से कुछ श्लोकों के भाव यहाँ लिखते हैं। हमारे श्रीराघवलाल सदा शान्त प्रकृति के हैं। आप सर्वदा कोमल वचन ही बोलते हैं। यदि आप से कोई कटु वचन भी कह दे, तो आप उसे सह लेते तथा मुसुका देते हैं। कटु वचन का उत्तर कटु वचन द्वारा नहीं देते हैं, मौन रहते।

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥१।१०

आप बड़े बुद्धिमान है, सदा मिष्टभाषी हैं। अपने से मिलने वालों से उन्हें प्रिय लगने वाले वचन ही कहते हैं। और समागत बन्धु आप से वार्तालाप करने में संकोच करें, तो पहले आप ही उनसे बोल लेंगे। इतने शूरवीर और पराक्रमी होकर भी शौर्यगर्व तो आपको छू भी नहीं गया।

बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥ १/१३

आप झूठ तो कभी बोलते ही नहीं। इतने बड़े विद्वान् होकर भी साधारण जानकार वृद्धों का भी अतिशय आदर सत्कार करते रहते हैं।

न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः ॥ १/१४

श्रीरघुकुलमणि जू, परम दयालु हैं। क्रोध का तो नामो निशान भी आप में ढूढ़ने पर नहीं मिलेगा। ब्राह्मणों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इष्टदेव की भाँति पूजा करते हैं। दीन दुखियों पर बड़ी ही दया करते हैं। धर्म रहस्य सीखना हो तो कोई आपसे सीख जाय। आप सदा जितेन्द्रिय तथा भीतर बाहर से पवित्र रहने वाले हैं।

सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः॥ १।१५॥

असंगलकारी निषिद्ध कर्मों में तो कभी आपकी प्रवृत्ति भी नहीं होती। शास्त्र विरुद्ध वार्ता तो सुनेंगे ही नहीं। न्याय पक्ष समर्थन में एक से एक बढ़कर युक्तियाँ आपसे सुना करिये, मानो आप अपर बृहस्पति ही हैं।

नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथा रुचिः।
उत्तरोत्तर युक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा॥१।१७॥

आप गुरुजनों के प्रति दृढ़ भक्ति रखते हैं। आपकी बुद्धि निश्चयात्मिका है। असद वस्तु कभी नहीं ग्रहण करेंगे। आलस्य प्रमाद आपके पास फटकने भी नहीं पाते। श्रीमुख से दुर्वचन कभी निकलते ही नहीं। अपने तथा पराये के दोषों एवं छिद्रों को भलीभाँति जानने वाले हैं।

दृढ़भक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः।
निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च स्वदोष परदोष वित्॥ १ २४॥

आप औरों के दोषों को देख सुनकर भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते। हैं जितक्रोध। दर्प और ईर्ष्याद्वेष तो आप में है ही नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी ॥ १।३०॥

राजाओं के लिये युद्ध व्यवस्था तो नित्य बनी ही रहती है। कभी कोई मंडलेश्वर द्रोही बन गया, कभी आततायिओं का निग्रह करना पड़ा, कभी किसी ठीठ प्रजा ने राज्यस्व देना ही बन्द कर दिया। ऐसे प्रसङ्गों पर युद्ध की नौबत श्रीकौशलेन्द्रजी के ऊपर भी आती रहती थी। श्रीचक्रवर्तीजी के बड़े लाल साहब, अपने रहते श्रीपितृचरण को युद्ध में नहीं जाने देते। श्रीराजदुलारे जू स्वयं पितृचरण की आज्ञा लेकर, चतुरंगिणी सेनाओं के साथ शत्रुओं से जा भिड़ते। युद्धों में विजय लक्ष्मी तो रीझ कर, आपही को सदा वरण करती थी। संग्राम विजयी होकर, लौटने पर श्रीअयोध्या के नागरिकों के द्वारा आपका बड़ा ही भव्य सत्कार होता था। ऐसे अवसरों पर भी आप विजय गर्व में फूलकर नागरिकों की उपेक्षा कर दें, ऐसा सील सिन्धु श्रीरघुलालजी से कभी होना संभव ही नहीं था। आप श्रीअयोध्यापुरी वासियों के साथ घुलमिल के उनके अत्यन्त अन्तरंग आत्मीय बन गये थे। प्रत्येक नागरिक के प्रति अलग अलग रूप बनाकर, सबों से हृदय लगाकर मिलते। उनकी कुशल विस्तार पूर्वक पूछते। कहिये आपके दैनिक अग्निहोत्र का अग्नि नित्य प्रज्वलित रहता न?

आपके सपूत लाल का लालन पालन प्रशिक्षण कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है न? आपकी चतुर गृहिणी आपकी अनुकूल सेवा तो करती हैं? आपके सेवक सकुशल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहकर, आपकी सेवा में प्रवृत रहते हैं कि नहीं ? कहिये विप्र-देव ! आपके शिष्य लोग आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं कि नहीं ? तथा आपकी सेवा शुश्रूषा में कसर तो नहीं लाते ? कहिये, क्षत्रिय ज्ञाति बन्धु? आपके सेवक कवच आदि से सुसज्जित हो. आपकी अंगरक्षा में सदैव सन्नद्ध रहते हैं न ? क्या कोई पिता अपने औरस पुत्रों को भी इतना लाड़प्यार करेगा. जितना स्नेह श्रीअयोध्या के समस्त नागरिकों को अकेले आप से प्राप्त होता रहता है। आप श्री अयोध्या कांड के दूसरे सर्ग वाले श्लोक संख्या ३७ से ४० तक अर्थ विचार पूर्वक पढ़ें । पाठ इस प्रकार से है—

संग्रामात् पुनरागत्य कुञ्जरेण रथेन वा ॥
पौरान् स्वजन वन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ।
पुत्रेष्वग्निदारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च: ॥
निखिलेनानुपूर्व्या च पिता पुत्रानिवौरसान् ।
शुश्रूषन्ते च वः शिष्याः कच्चिद् वर्मसुदंशिताः ॥
इति वः पुरुषव्याघ्रः सदा रामोऽभिभाषते ॥

पुनः करुणामय रघुनाथ गोसाईं जी किसी भी नगर वासी को संकटापन्न देखते, तो बहुत दुखी हो जाया करते हैं। उन नगर वासी बन्धुओं के घरों में सदैव मंगलोत्सव होते रहने से ही आपको पिता की भांति प्रसन्नता होती थी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥ २।२।४०,४१

महर्षि वाल्मीकि द्वारा कथित श्रीराघव गुण गण, हम सविस्तर 'श्रीराघव गुण सुधा सागर सीकर' नामक, अागले निबन्धों में क्रमशः लिखेंगे । स्वभाव में इतना ही संकेत चतुर अन्वेषकों के शोध कार्य के निमित्त पर्याप्त समझते हैं ।

३-श्रीभुसुंडि कृत स्वभाव वर्णन



अब हम श्रीराघव स्वभाव के तीसरे मर्मज्ञ काकर्षि श्रीभुसुंडिजी के कथनानुसार, स्वभाव विवेचन करेंगे । श्री-भुसुंडिजी श्रीराघव जू के शिशु स्वभाव के तो प्रत्यक्ष दर्शी हैं । आपका कहना है कि—

जब जब अवधपुरी रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ । सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥
पुनि उर राखि राम सिसु रूपा । निज आश्रम आवउँ खग भूपा ॥
श्रीमानस ७/११४/१०,१३,१४

शेष स्वभाव परिचायक लीला रहस्य के दिव्य ज्ञान के लिये, आपको अपने सद्गुरु महर्षि लोमशजी से आशीर्वाद प्राप्त है । आशीर्वाद के प्रभावसे श्रीकाकर्षिजी वह लीला रहस्य भी जानते हैं, जो आज तक किसी भी चरित ग्रन्थों में नहीं लिखे गये हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राम रहस्य ललित विधि नाना । गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ॥
बिनु श्रम तुम्ह जानव सब सोऊ । नित नव नेह राम पद होऊ॥
७'११४/७,३

श्रीकाकर्षिजी श्रीरघुलालजी के दो प्रकार के स्वभावों पर, विशेष मुग्ध हैं। एक तो आप अपने जनों में हानिकारक विकार देखते ही, उसे समूलोच्छेद कर देते हैं, दूसरा कि आप लोक दृष्टि से नीचातिनीच कुपात्रों पर भी ऐसी कृपा करते कि उसे ऊँच से ऊँच पद पर प्रतिष्ठित करके दम लेते हैं। उभय स्वभावों के दृष्टान्त स्वरूप श्रीकाकर्षिजी स्वयं हैं।

एक समय की बात है। श्रीकाकर्षिजी किसी कल्प वाली अवतार लीला दर्शन करने, अपने आश्रम से आये थे। उस समय श्रीराघव जू अत्यन्त माधुर्यमयी शिशु लीला कर रहे थे। श्रीचक्रवर्तीजी महाराज के रनवास वाले विशाल मणिमय प्राङ्गण में आपका शिशु विनोद हो रहा था। श्री कौशल्या अम्बाजी ने श्रीलालजी के सुकोमल मनोहर करकंज में पिस्ते का मधुर सनेह सिक्त पूआ दे रखा था। श्रीलालजी खेलते भी हैं, बीच में बीच पुएको कुतर कुतर कर खाते भी जाते हैं। कुछ प्रसाद कण अधिकारियों के निमित्त आङ्गन में गेरते भी जा हैं। श्रीकाकर्षिजी स्वयं कहते हैं—

मैं उस समय आँगन के एक छोर पर बैठकर, शिशु विनोद दर्शन का सुख लूट रहा था। इधर श्रीलाल साहब की दृष्टि पड़ी, मुझ पर। किलकते किलकते दौड़ पड़े मुझे पकड़ने।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं संकोच बश वहाँ से उड़ भागा। भोजन काल में अपने अपावन काक शरीर कैसे प्रभु से स्पर्श कराऊँ?भागनेपर लालजीने मुझे पूए देने का प्रलोभन देकर,निकट बुलाया। आओ आओ, तुम्हें पूए की प्रसादी मिलेगी। मैं प्रसाद के लोभ से निकट जाता, तो लालजी हँस पड़ते। पुन: मैं अपावन शरीर के स्पर्श संकोच से दूर हट जाता, तो प्रभु रोने लगते। प्रभु का रोना मुझसे कैसे सहा जाय ? संकोच छोड़, श्रीचरण स्पर्श के लिये निकट पहुँचता, तो आप मेरी ओर देख देख कर, भय पूर्वक भागने लगे। मेरे मन में ब्रह्म की जगह साधारण नर बालक का भ्रम हो गया। बिचारने लगा कि सर्वज्ञ ब्रह्म को अपने स्वजन काक से क्यों भय होने लगा ? भय पूर्वक भागता है, तो ब्रह्म कैसा ? हो न हो, यह साधारण नर शिशु है। मैं इतना ज्ञानी होकर भी ब्रह्म की पहचान में भूल कर बैठा। फिर तो मेरे ज्ञानाभिमान मिटाने को प्रभु ने अपने उदर में मुझे मुख मार्ग से प्रवेश कराकर, अनन्त ब्रह्माडों के दर्शन जो कराये हैं, सो श्रीमानस पाठकों से छिपा नहीं है। यद्यपि अभिमानभंजन में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि ब्रह्मांडों में भटकते भटकते मुझे सौ कल्प बीत गये। किन्तु यह सब वाह्य लीला के हिसाब से हुआ, केवल दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनट में ही। ज्ञान अभिमान भंजन करने के लिये, मेरे परम सुहृद राघवलाल ने मेरे पीछे अपनी माया प्रेरित कर दी थी।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माया अभिमान जन्य मोह निवृत के लिये नियुक्त की गई थी। इस प्रक्रिया में मुझे कष्ट तो हुआ बहुत, परन्तु हुआ कितना बड़ा हित! पुनः श्रीलालजी के विहसते ही मैं श्रीमुख मार्ग से बाहर आ गया। पुनः वही माधुर्य शिशु विनोद! डर गया कि मोह न पछाड़े। अतः त्राहि त्राहि कहकर, प्रभु के श्रीचरणों पर गिरा।

त्राहि त्राहि आरत जन त्राता।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥

७/८३/३, ४

प्रभुओं का स्वभाव होता है। अनुशासन वाली दण्ड व्यवस्था के पश्चात् कृपा भी वैसी ही अधिक होती है।

सासति करि पुनि करहि पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥

इन प्रभुओं में श्रीराघव महाप्रभु की तो बात ही सबसे विलक्षण है। आपने श्रीकाकजी को इस शासन के पश्चात् ऐसा दुर्लभ वर दिया—

जो मुनि कोटि जतन नहि लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं

वह वरदान था अविरल विशुद्ध भक्ति का। मागा भी इनने वही था।

अविरल भगति विसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥

४/८४ (क)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह अभिमान भंजन लीला केवल भुसुंडिजी तक ही सीमित नहीं रही। यह तो श्रीराघवजी का स्वभाव बन गया है। भई, अभिमान ही तो संसार में भ्रमाने वाला है। अभिमान से नाना प्रकार के कष्ट होते हैं। सभी प्रकार के शोक, अभिमान के कारण ही, जीव पर आते हैं। अतः आप सर्वसुहृद होकर, ऐसे अपकारी अभिमान को अपने जन में कैसे रहने देंगे? हाँ, अभिमान भंजन में थोड़ा कष्ट तो आप के जन को होता ही है, पर किया क्या जाय? आप प्राकृत लोक में नहीं देखते? शिशु शरीर में कोई दुःखदायी व्रण निकल गया, तो मा उस बच्चे को अपनी ही गोद में रखकर, नश्तर लगवाती है। बच्चे को शल्यकष्ट होता है, तो क्या किया जाय? व्रण तो किसी प्रकार छोड़ाना ही है। अतः श्रीकाकजी के ही मुख से सुनिये—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहि काऊ॥
संस्रृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहि कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसुतन व्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिनकी नाईं॥

पुनः दूसरे स्वभाव की बात कही नीचे को ऊँचा बनाने वाला। सो अपने ऊपर श्री काकजी ने घटाया है कि श्री-गरुड़जी, देखिये तो सही, कहाँ मेरा काक शरीर, सब प्रकार से अपावन। यात्रा समय कोई काक को देख ले, तो उसका शुभ शकुन ही बदल जाय। सो मुझे भी प्रभु ने जगत विदित पावन बनाकर अपना लिया। जगद्गुरु भगवान् शंकर, लोक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिता ब्रह्मा जैसे महान भी आपकी सेवा पूजा के लिये लालयित रहते हैं। ऐसे महान् से भी महान 'महतो महीयान्' मेरे जैसे काक शरीर पर इतनी महती कृपा करें। इसे खग-राज आप क्या कहेंगे? चित्त की अतिशय कोमलता छोड़ और क्या हो सकता है?

देखु गरुड़ निज हृदय विचारी। मैं रघुबीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह विदित जग पावन

७/१२३/७,८

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥

अतः श्रीभुसुंडिजी के मत से ऐसा स्वभाव कहीं देखने सुनने को मिलना दुर्लभ है।

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ

श्रीभुसुंडिजी के एक और स्वभाव अनुभव कहने के समय हमें श्रीभरद्वांजजी की एक उक्ति याद आती है। श्री-भरद्वाजजी अपने आश्रम में समागत श्रीराघव जू से कहते हैं कि मानसिक वाचिक कर्मणा कपट छोड़कर, जब तक प्रभो! जीव आपका भक्त न बन जाय, तबतक उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलने की। चाहे सुख पाने का कोटि कोटि अन्य यत्न करके जन्म जन्मान्तर रचना पचता रहे।

करम वचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किएँ कोटि उपचार॥

२।१०७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सम्बन्ध में श्रीकाकभुशुण्डिजी आप बीती बात कहते हैं।

प्रथम मोहमोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥
नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना ॥
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥
देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भएउँ अबहि की नाईं ॥
सुधि मोहि नाथ जन्म बहुकेरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी॥
७/९६/६-१६

अतः सकल सुख दायक स्वभाव वाले श्रीरघुनायक ही भजन के लायक हैं।

४ भगवान शंकर कृत स्वभाव वर्णन



भगवान शंकर को श्रीमुख से अपने स्वभाव का मर्मज्ञ कहा है।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
कहँ स्वभाव सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
२/२६४

यहाँ अपने स्वभाव का साक्षी श्रीशंकरजी को बता रहे हैं। यों तो हमारे साम्प्रदायिक सिद्धान्त के अनुसार श्रीहनुमतलालजी नित्य लीला देश में भी श्रीराघवजी के नित्य पार्षद हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अयोध्यावासिनो नित्या ब्राह्मणप्रमुखा स्तथा ।
नित्या भृत्याश्च दास्याश्च श्री राजकुल सेवकाः ॥
—श्रीवसिष्ट संहितायाम् ।

अर्थात् ब्राह्मणादि चारों वर्ण वाले अयोध्या वासी नित्य हैं। श्रीराजकुल के सेवक, किंकर तथा दास गण भी नित्य हैं।

साकेत दक्षिण द्वारे हनुमान् राम वत्सलः ।
यत्र सांतानिकन्नाम वनं दिव्यं हरेः प्रियम् ॥
—श्रीसदाशिव संहिता ।

अर्थात् श्री हनुमतलाल जू का पहरा है। श्रीमनहरण राघवलाल के प्रिय सान्तानिक नामक बन इसी द्वार पर है। इस श्लोकसे भी हनुमतलालजी का नित्य पार्षद होना सिद्ध है।

यह तो नित्य देश वाली नित्य लीला की बात हुई। अवतार लीला में कभी कभी भगवान शंकर, अपने इष्ट श्री-राघव जू की निकट सेवा का सुख लूटने के लिये, श्रीहनुमान रूप धारण कर लेते हैं। अगले उद्धरणों को समझने के लिये, ध्यान में रखना होगा कि श्री हनुमत रूप से प्रभु राघव के वात्सल्य स्नेहका सुखानन्द का आस्वादन कर, स्वयं अपने शंकर रूप से भी उसी वात्सल्य का भाजन मान रहे हैं।

श्रीहनुमतलाल तथा श्रीशंकरजी में अभेद के प्रमाण।

जेंहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरहि सुजान ।
रुद्र देह तजि नेह वस, वानर भे हनुमान ॥ दो० १४२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् जिस शरीर से श्रीराघवलाल के स्नेह पूर्ण सेवा बन जाय, उसी शरीर को ज्ञानी जन आदरणीय मानते हैं। देखिये न, स्नेह वश ही से तो भगवान शंकर, अपना ऐश्वर्य मय रुद्र रूप त्याग कर, वानर रूप से श्रीहनुमान बन गये।

जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भये, हर ते भे हनुमान ॥ दो० १४३

जयति धीर धुर, वीर रघुवीर हित
रुद्र अवतार संसार पाता। श्रीविनय २५

अब हम श्रीशंकर कृत श्रीराघव स्वभाव लिखते हैं।

भगवान शंकर श्रीपार्वतीजी से कहते हैं कि श्रीराघव जू ऐश्वर्य विचार से तो चराचर जगत के पालक ईश्वर हैं। व्यापक रूप से आप ही सर्वान्तर्यामी हैं। किन्तु आपकी माधुर्य लीला दर्शन से निश्चय होता है कि आपका चित्त अत्यन्त कोमल है। आप दीनों के दुख सह नहीं सकते। उन्हें अपनी दया से निहाल कर देते हैं। श्रीजटायुजी जाति के गिद्ध थे। मांस भक्षण करना आपका जातीय स्वभाव था। त्रिजग योनि में भी अत्यन्त घृणित गीध जाति होती है। उन में अपने प्रति प्रेम देख कर रीझ गये। उन्हें अपना परात्पर धाम भेज दिया, जो श्रीधाम योगिजनों के लिये भी दुर्लभ है, योगीश्वर गण तरसते रहते हैं, शीघ्र नही मिलता। ऐसे दुःखहरण रघुलाल के भजन को छोड़कर, लोग विषयानुरागी बन जाते हैं, उनसे बढ़ा अभागी और कौन होगा ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोमल चित अति दीन दयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्हीं जो जाचत जोगी॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहि विषय अनुरागी ॥
गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥
३/३९

पुनः दूसरे संवाद में भगवती पार्वती जी से भगवान शंकर जी कहते हैं कि उमे ! श्री रघुलाल जू के समान दीन हितकारी स्वभाव आपको कहीं नहीं मिलेगा । माता, पिता, बन्धु जागतिक अन्नदाता मालिक, और देवता, मानव, मुनि गण सबके सब, अपने अपने मतलब के यार हैं । इनमें सच्ची निस्वार्थ हितैषिता कहाँ से आवेगी ? दृष्टान्त के लिये श्री-सुग्रीवजी को ही ले लो । कहाँ इन्हें बालि के त्रास से प्राणों के लाले पड़े हुये थे । बालि के साथ युद्ध में हताहत होने के कारण अभी तक इनके अंगों में घाव बने थे । पत्नी तथा भोग सम्पत्ति के छिन जाने से, चिन्ता के मारे, इनकी छाती जलती रहती थी । ऐसे दीन हीन संकटापन्न सुग्रीव को भी श्रीराघव जू ने सब दुख मिटा कर किष्किन्धापुरी में वानरों का राजा बना दिया । अतः कहना पड़ेगा कि श्रीराघव स्व-भाव में अत्यन्त कृपा हुलसती रहती है ।

उमा राम सम हित जग माँहीं । गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती । स्वारथ लागि करहि सब प्रीती॥
बालि त्रास ब्याकुल दिन राती । तन बहु व्रन चिंता जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ । अति कृपालु रघुवीर सुभाऊ ॥
४/१२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमैथिलीजी के अन्वेषण के लिये, श्रीअङ्गदादि वानर वीर भेजे जाते हैं। उनमें श्रीराघवलाल ने एकमात्र श्रीहनुमान् जी को, इस कार्य के उपयुक्त पात्र चुना और उन्हीं को अपनी मुद्रिका श्रीमैथिली जी के विश्वास के निमित्त अपना अभिज्ञान दिया। समुद्र तट पर संपाती के द्वारा लंका में श्रीमैथिली जू की स्थिति का पता पाकर, श्रीहनुमानजी, समुद्र लाँघ गये। मार्गारम्भ में आपने सात्विक माया स्वरूपा नाग माता सुरसा को अपनी बुद्धि और सिद्धि के बल से जीत कर, उनसे पींड छुड़ाया। समुद्र जल में छिप कर रहने वाली छाया ग्राहिणी सिंहिका नाम्नी तामसी माया का आपने काम तमाम किया। लंका प्रवेश काल में लंकिनी नामक राजसी माया को वज्र तुल्य मुक्के से अधमुई बनाकर, लंका में प्रविष्ट हुये। स्वल्प काल ही में आपने सुविशाल लंका नगरी के घर-घर के कोने-कोने छान डाले। 'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा।' उसी परिशोध कार्य में आपको भी हरि कृपा से भक्तराज श्रीविभीषणजी से भेंट हुई। उन्हीं के द्वारा श्रीमैथिलीजी का पता पाकर, अशोक वाटिका के अशोक वृक्ष के नीचे, अपनी श्रीसिया स्वामिनी जू के दर्शन किये। उनके मर्मान्तक विरह व्यथा से अवगत होकर, उन्हें सम्यक् आश्वासन दिया। रावण के देखते देखते उसकी उस अशोक वाटिका को तहस नहस कर दिया, 'जो मेघनाद ते दुलारो प्रान ते पियारो, बाग, अति अनुराग जिय जातुधान धीर को। (श्रीकविता०) था। उस वाटिका के बचाव युद्ध में श्री हनुमानजी ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रावण के पाँच सेनापति, सात मंत्रिपुत्रों के साथ साथ रावण पुत्र अक्षयकुमार को भी क्षय कर दिया। (श्रीवाल्मीकीय०), सुन्दर काण्ड अध्याय ४५, ४६ और ४७। युद्ध में मेघनाद के छक्के छुड़ाये और रावण सभा में प्रविष्ट होकर, उसकी बुद्धि वल, को परखने के विचार से स्वेछापूर्वक मेघनाद के ब्रह्म पास में आवद्ध हो गये।

रावण सभा में घुस कर, एक चतुर गुप्तचर की भाँति रावण के बुद्धिवल, सेनावल अस्त्र वल आदि सभी युद्धोपयोगी विषयो का स्वल्प काल ही में सारे मर्म समझ लिये। पुनः उसी सिलसिले में सोने की लंका प्रवल शत्रु के देखते देखते जला कर भस्म कर दिया। पुनः समुद्र स्नान कर, श्री-मैथिली अम्बा के दर्शन किये। उनको भलीभाँति समझा बुझा कर, उनकी ओर वाली सहिदानी चूड़ामणि पाकर पुनः सकुशल समुद्र पार आ गये। श्रीराघव जू के सम्मुख उपस्थित किये जाने पर, वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्रीजाम्वन्तजी ने श्रीहनुमानजी के अद्भुत कर्म कौशल की प्रशंसा करते हुये कहा—
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहु मुख न जाइ सो वरनी॥

श्रीहनुमतलालजी के आद्योपान्त सारे उपकार कृत्यों से अवगत होकर, श्रीराघवलालने इन्हें बार-वार हृदय से लगाया और कृतज्ञता ज्ञापन पूर्वक यहाँ तक कह दिया कि वेटा ! मैं तुम्हारे उपकार भार से इतना दव गया हूँ कि मेरे द्वारा प्रत्युकार सर्वथा असंभव है। तुम मुझ से ऋणपत्र लिखवा लो। चतुर वक्ता श्रीहनुमतलालजी ने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला वचन विगत अभिमाना ॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ॥
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोरे प्रभुताई ॥

श्रीहनुमतलाल जी के उपर्युक्त वचन निरी चापलूसी नहीं माननी चाहिये । सवा सोलह आने सत्य है ! आप स्वयं प्रभु से पूछ लीजिये—नाथ, जीव मात्र को शक्ति सामर्थ्य देने वाले तो आप ही हैं—

सुन रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जाबल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरिकानन ॥

इत्यादि उपलक्षणों से समझ लीजिये ।

सद्बुद्धि भी तो आप ही देते हैं । अपने अंशभूत भगवान श्रीकृष्ण से आप ही ने श्रीगीता १०–१० में कहवाया है 'ददामि बुद्धियोगं' पुनः 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः' श्रीगीता ११/८ के अनुसार अलक्ष्य वस्तुओं को लखने वाले दिव्य चक्षु भी आपही का दिया हुआ है । श्रद्धा भी तो कर्तव्य पालन के उपयुक्त आपही की देन है—

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरिकृपा हृदयँ बस आई ॥

आपही बताइये नाथ, हमारे पास कौन सी ऐसी विशेष वस्तु है जो आपकी दी हुई न हो ?

ऐसी स्थिति में श्री हनुमतलालजी ने जो कुछ आपका उच्चार किया इसमें श्रेय होना चाहिये श्रीकपिराज के पुरुषार्थ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का, कि आपकी देन का ? आपको झूठ बोलने तो आता ही नहीं । कहिये सर्वथा सत्य ।

उत्तर सुनिये । तुम क्या जानो ? मान लो कि सारी देन मेरी ही सही, परन्तु दान को धारण करने की पात्रता भी तो चाहिये । श्रीहनुमान के समान सत्पात्र दूसरा ढूढ़ कर ला दो, तो मानूँगा । हार गया प्रभो ! स्वामी से वाक चातुरी में कौन जीते ?

इधर अपनी प्रशंसा, अपने कृतज्ञ सिरमौर स्वामी के श्रीमुख से सुनकर चतुर हनुमानजी डर गये । कहीं अपनी बड़ाई सुनकर, अभिमान न हो जाय, नहीं तो सारी सेवा व्यर्थ हो जायगी । अतः संभाव्य अभिमान की आशंका से आकुल होकर त्राहि त्राहि कहकर, श्रीचरणों में लिपट गये ।

सुनि प्रभु वचन बिलोकि मुख, गात हरष हनुमंत ।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत ॥
बार बार प्रभु चहइ उठावा । प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥

इस पर प्रभु ने अपना वरद हस्त कंज श्रीवानरेन्द्रजी के माथे पर रखकर, उन्हें आश्वस्त किया कि तुम्हारे मन में मैं अभिमान उपजने दूँगा ही नहीं । डरो मत !

प्रभु कर पंकज कपि के सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥

शंकरजी को लगा कि अभी अभी मेरे ही माथे पर प्रभु के वरदहस्त कमल पड़ रहे हैं । प्रेम मग्न हो गये । पराम्बा श्रीमैथिलीजी के द्वारा श्री हनुमतलाल जी को पहले ही लंका अशोक वाटिका में अशीर्वाद मिल चुका है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥

वही आशीर्वाद फलीभूत होने का समय आ गया है।
कपिराज ने अवसर देखकर दुर्लभ वरदान माग लिया ।

नाथ भगति अति सुख दायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तव कहेउ भवानी ॥

जिस वड़भागी सज्जन को आप सब प्रकार से बनाने की ठान लेते हैं, उसके पीछे आपकी कृपा हाथ धोकर पड़ जाती है और सब प्रकार से बनाकर ही दम लेती है। श्रीहनुमत रूपधारी भगवान शंकर इसके साक्षी हैं । इसी पर जगद्गुरु भोले बाबा बोल उठे—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

सच है, भगवन्। इसी से--

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग आराती ॥

जगद्गुरु भगवान शंकर श्रीराघव स्वभाव विषयक एक विलक्षण रीति बताते हैं। वह यह कि आप अपने प्रपन्नों से ऐसी प्रीति करते हैं कि उन्हें अपने से भी अधिक महत्त्व दे डालते । दृष्टान्त के लिये श्रीरामचरितमानस के प्रधान वक्ता श्रीशिवजी 'रामेश्वर' स्थापना का प्रसंग बताते हैं। आप तो प्रसिद्ध श्रीराम भक्त हैं । 'वैष्णवाणां यथा शम्भुः' लोकोक्ति है। अपने मुख से ही बारम्बार अपना इष्टदेव श्रीराघवलाल को ही बताते हैं।

सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ॥

श्रीगीता के चौथे अध्याय वाले ग्यारहवें श्लोक में बताया गया है कि जो भक्त सगुण साकार ब्रह्म को जैसे भजता है, वैसे ही ब्रह्म भी उसका भजन करते हैं—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम् ।

श्रीराघवलाल तो थोड़े भजन करने वाले भक्त को, उस से अधिक भजते हैं।

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही ॥

सो अपने भक्त श्री शंकर जी को अपना इष्टदेव ही, बना लिया। आपको जैसा इष्ट मानते हैं, उससे अधिक आप उन्हें मानते हैं। देखिये न, अपने भक्त का शिवलिंग स्थापना करने चले हैं, सेतुबंध के मूल में। उनका नामकरण करते हैं 'श्रीरामेश्वर'। मुनियों ने पूछा—प्रभो, रामेश्वर शब्द आप किस अर्थ में इन्हें कहते ? झट से उत्तर दिया कि ऐसा क्या पूछना ? 'रामस्य ईश्वरः' अर्थात् श्रीराम के भी इष्टदेव सो रामेश्वर। लिंग स्थित श्रीशिवजी को बर्दाश्त कैसे हो ? शिव लिंग से वाणी उच्चारित हुई। नहीं नहीं, 'राम एव ईश्वरो यस्य' अर्थात् श्रीराघव ही जिनके ईश्वर स्वामी है, वह शंकर।

'रामस्तत्पुरुषं वक्ति बहुव्रीहिं महेश्वरः ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप अपनी पूजा से इतने प्रसन्न नहीं होते, जितनी प्रसन्नता अपने भक्तों की पूजा से आपको होती है।

मानत सुख सेवक सेवकाई ।

पूजन दर्शन का फल भी श्रीमुख से अधिक बताया। इसी पर श्रीशंकर के मुख से उद्गार निकल पड़ा।

गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती ॥

५– श्रीराघव-स्वभाव ज्ञात्री पार्वती जी



भगवती पार्वतीजी कतिपय राघव लीलाओं को प्रत्यक्ष देख भी चुकी हैं। यथा—

बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ।। सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी ॥ १/२३६/६,७)

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।

भगवान् शंकरजी के मुख से बराबर श्रीरामचरित सुनती रहती हैं। इसी क्रम में इन्हें स्वभाव परिचय भी प्राप्त होता रहता है। श्रीरामचरितमानस में कहीं श्रीपार्वतीजी के मुख से श्रीराघव स्वभाव परिचायक प्रवचन पढ़ने को नहीं मिलते। केवल थोड़े से सूत्रात्मक शब्द उस समय के हैं, जब आप श्रीगिरिजा रूप से श्रीसिया सुकुमारी जू को आशीर्वाद दे रही हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मनु' जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो ।
करुनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ॥

यहाँ श्रीपार्वतीजी द्वारा प्रयुक्त 'सुजान' शब्द श्रीराघव विषयक एक विशिष्ट स्वभाव परिचायक है । माधुर्य लीला करते हुये भी हैं आप सर्वान्तर्यामी ही । किन्तु अन्तर्यामी होते हुये भी, स्वजनों के हृदयगत दोषों को आप मानो जानते ही नहीं । हाँ, उनके हृदय में आप के प्रति तनक सा भी स्नेह का छींटा हो, तो उसे बहुत अधिक करके मान लेते हैं ।

तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें ।

आपके उपर्युक्त प्रेम पारखी स्वभाव विषयक नीचे उद्धृत कतिपय मानस पंक्तियों पर पाठक विचार करें ।

कहत नसाइ होइ हियँ नीकी । रीझत राम जानि जन जीकी ॥
रहत न प्रभु चित चूक किएकी । करत सुरति सय बार हिएकी ॥
देखि दयाल दसा सब हीकी । राम सुजान जानि जनजीकी ॥
अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥

श्रीपार्वतीजी द्वारा प्रयुक्त 'करुमानिधान' शब्द का भाव भी श्रीराघव स्वभाव परिचायक है ।

करुनामय रघुनाथ गोसाँई । वेगि पाइअहि पीर पराई ॥

श्रीमिथिलेश राजकिशोरीजी के हृदय में राघव मिलन विषयक पूर्वराग जन्य विरह पराकाष्ठा को पहुँच गया है । यह स्नेह पारखी सुजानशिरोमणि करुणावरुणालय श्रीरघुलाल जू से छिपा नहीं है । अतः वे अपने मिलन का अविलंब सुयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने ऐश्वर्य प्रभाव से स्वयं ही बैठायेंगे। विरही का काम है विरहातुरता बढ़ाना, मिलन का सुयोग सम्हालना उनका काम है जो सर्वसमर्थ हैं, और हैं सनेह रिझावर भी। श्रीमिथिलेश राजदुलारी के व्याज से यहाँ सभी विरही स्नेहियों के लिये आश्वासन वचन श्री पार्वती जी दे रही हैं स्वभाव कथन के द्वारा।

६-श्रीराघव स्वभाव ज्ञाता श्रीहनुमानजी

श्रीहनुमतलालजी ने भक्तराज श्रीविभीषणजी के साथ प्राथमिक समागम में, उन्हीं से, श्रीराघव स्वभाव की थोड़ी चर्चा की है। आपके कहने का तात्पर्य है कि कोई जीव श्रीराघवजी का सेवक कहाने का नाम मात्र भी स्वाँग सज ले, फिर तो—

सब के प्रिय सेवक यह रीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती॥

ऐसा बचन कहने वाले, उस नाम मात्र के सेवक पर अपार प्रीति दरशाने लगते हैं। सेवक के पात्रापात्र का तो विचार हुई नहीं। मनुष्य की कौन कहे? वानर, भालु, गीध, काक तक आपकी सेवा के अधिकारी हो सकते हैं।

सुनहु विभीषन प्रभु कै रीती। करहि सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर ।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥

लंका अशोक वाटिका में स्थित श्रीराघव विरह विह्वला श्रीवैदेहीजी को सान्त्वन वचन के सिलसिले में श्रीहनुमत-लालजी श्रीराघव स्वभाव का थोड़ा सा वर्णन करते हैं--

श्रीअम्बाजी, आप मेरा सत्य वचन सुनें । आपके प्राणवल्लभ बड़े ही करुणानिधान हैं । अपने स्वजनों में जितना दुःख वे देख सुन लेते, उनसे भी अधिक दुखी तो वे स्वयं ही हो जाते हैं । आपके विरह कष्ट में उनमें ऐसी जड़िमा छा गई है कि वे तो अपने बाणों की महिमा और प्रभाव भी भूल गये । ऐसा नहीं होता तो, उनके बाणों के सामने क्या राक्षस गणों की हस्ती अभी तक रह पाती ? क्या सूर्य के उदय होने पर भी, अन्धकार का नामोनिशान रह सकता है ? यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि विरह में रस शास्त्रकारों ने दश दशाओं की संभावना बताई है ।

१- अभिलाषा, २- चिन्ता, ३- स्मृति, ४- गुण कीर्त्तन, ५- उद्वेग, ६- प्रलाप, ७- उन्माद, ८-व्याधि ९- जड़ता और १०- निधन । उपर्युक्त श्रीराघव विरह की जड़िमा, मरण के पहले वाली नौमी दशा है, विरह की चरम सीमा है । श्रीराघव स्वभाव विषयक दूसरी बिशेषता श्रीहनुमत-लाल बता रहे हैं कि आपके प्राणनाथ प्रभुता में महान् से महान हैं । श्रीशिव ब्रह्मादिकों के भी पूज्य हैं । अखंड ज्ञानघन है । परन्तु कुपात्र सेवक के आगे भी उसकी समता कोटि वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सखा बन जाते हैं। देखिये न, मैं चंचल वानर जाति का हूँ। आपका सन्देश कहने के लिये, मेरे कान लगकर, ऐकान्तिक वार्ता इस प्रकार से की, मानों मैं उनका अभिन्नहृदय अन्तरंग सखा होऊँ।

अम्बाजी, आपके विरह में कब उनके प्राण पयान कर गये होते। श्रीसुग्रीवजी के इतने ही वचन उनके प्राण रक्षक बन गये, कि श्रीकपिराज ने उन्हें आश्वासना दिया है कि आप की प्रियाजी अभी जीवित हैं। मैंने उनके दर्शन किये हैं। मुझे देखकर, वे अपने कुछ भूषण एक वस्त्र खंड में बाँधकर मेरे ऊपर गेर गई हैं। उनके माँगने पर, श्रीसुग्रीव ने आपके भूषण वस्त्र उन्हें सौंप दिये हैं।

सत्य वचन सुनु मातु जानकी।
जनके दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की
तुव वियोग संभव दारुन दुख विसरि गई महिमा सुवानकी।
नतु कहुकहँ रघुपति सायक रवि, तम अनीक कहँ जातुधानकी
कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की।
कहँ हरि सिव-अज-पूज्य ग्यानघन,
नहि विसरति वह लगनि कानकी ॥
तुव दरसन-सँदेस सुनि हरिको, बहुत भई अवलंब प्रान की।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के, प्रेम मगन नहि सुधि अपानकी

श्रीगीतावली ५/११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराघव स्वभाव का वर्णन श्रीमैथिली जू के प्रति करते हुये श्रीहनुमतलालजी कहते हैं कि आपके प्राणनाथ, सूर्य के समान तेजस्वी, है, पृथ्वी के समान क्षमाशील है, बृहस्पति तुल्य उनमें बुद्धिमत्ता है तथा वे देवेन्द्र के समान यशस्वी हैं।

सर्वत्र भक्तिभाव पूर्वक पूज्य हैं, ब्रह्मचर्य व्रत पालन में तत्पर हैं, साधु पुरुषों का उपकार मानते हैं, और अपने आदर्श आचरणों के द्वारा सद्धर्म का प्रचार करते हैं।

राजनीति में पूर्ण शिक्षित है, ब्राह्मणों को उपासक है। ज्ञानवान् शीलवान् विनम्र और शत्रुओं को दण्ड देने में समर्थ हैं।

सत्यधर्म के अनुष्ठान में संलग्न, शोभा से सम्पन्न, न्यायसंगत अर्थसंग्रह और शरणागतों पर अनुग्रह करने में तत्पर, देशकाल के विभाग को समझने वाले तथा सब लोगों से प्रिय वचन बोलने वाले हैं।

तेजसाऽऽदित्य संकाशः क्षमया पृथिवी समः।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवो समः ॥ ९ ॥
अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥१२॥
राजनीत्यां विनीताश्च ब्राह्मणानामुपासकः।
ज्ञानवान्शील सम्पन्नो विनीतश्च परंतप ॥१३॥
सत्य धर्मरतः श्रीमान् संग्रहानुग्रहे रतः।
देशकाल विभागज्ञः सर्वलोक प्रियंवदः ॥२१॥

श्रीवाल्मीकीय रामायण ५/३५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किम्पुरुषवर्ष नामक दिव्य देश में श्री हनुमतलाल जी किन्नरों के बीच में श्रीराघवजी की ही उपासना करते हुये, उनके गुणानुवाद गाने के पहले इस मंगल श्लोक का पाठ किया करते हैं।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकायनम, आर्यलक्षण-शील व्रतायनम, उपशिक्षितात्मन उपासित लोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महाराजाय नम इति ।
—श्रीभगवत ५/१६/३

अर्थात् हम भगवान राम को नमस्कार करते हैं, पवित्र कीर्तिमान श्रीराघवलाल को नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषों के शील स्वभाव और आचरण विद्यमान हैं। आप बड़े ही संयत चित्त, लोकाराधन तत्पर, साधुता की परीक्षा के लिये कसौटी के समान हैं। अर्थात् परमोत्तम साधु स्वभाव से सम्पन्न हैं. और हैं अत्यन्त ब्राह्मण भक्त। ऐसे महापुरुष श्रीराघव जू को हमारा पुनः पुनः प्रणाम है ।

श्रीहनुमतलालजी किन्नरों को उपदेश करते हुये कहते हैं कि श्रीराघव जू को रिझाने के लिये, यह आवश्यक नहीं है कि साधक उत्तम कुल में समुत्पन्न हो, शारीरिक सुन्दरता, वाक्चातुरी. बुद्धि और श्रेष्ट योनि आदि की भी आप अपेक्षा नहीं करते । देखो न, हम बनवासी वानरों से उनने दोस्ती जोड़ ली है। देवता हो, दानव हो, मानव हो, चाहे बानर हो, सबों को चाहिये कि श्रीराम रूप ही की सब प्रकार से उपासना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे। आप नररूप में साक्षात् परब्रह्म है। थोड़ी सी सेवा को, भजन को, आप बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रित वत्सल हैं कि आप अपनी नित्य लीला में प्रवेश करते समय समस्त उत्तर कोशलवासी आकीटपतंग को भी अपने साथ ले गये।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोष हेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥
सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥८॥
श्रीभागवत ५/१६

७-श्रीलषण लाल का स्वभाव वर्णन



श्रीलषणलालजी, छाया की भाँति सतत श्रीराघवलाल के अनुचर भ्राता हैं। सन्निकट में रहकर, आपको श्रीलालजी के स्वभाव को अध्ययन करने का बराबर मौका मिला है।

अतः आपका स्वभाव वर्णन बिल्कुल यथार्थ होना चाहिये। ऐसे तो आप अपने अग्रज का सदा भय एवं संकोच

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते रहते हैं। बिना पूछे उनसे मुख खोल कर बोलते भी नहीं हैं।

देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूँछे वचन कहत अनुरागे॥

परन्तु एक अवसर पर बिना प्रभु के पूछे ही लषनलाल-जी के मुख से कुछ उद्गार निकल पड़े।

बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समय न ढीठ ढिठाईं॥

वह श्रीलषनलालजी का स्नेहोद्गार है, श्रीराघव स्वभाव परिचायक अतः उसे नीचे उद्धृत करते हैं।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समाना॥

८/२२७

हे स्वामिन! आप सर्व सुहृद हैं।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

--श्रीगीता ५/२९

स्थारथ रहित सखा सब ही के। हैं।

अतः आपकी सब प्रीति—'ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।' है। जीव सनेह करने में चूक भी जाय तो शील सनेह निधान के स्नेह में कभी कमी आसकती है? दूसरे, आप अत्यन्त सरल चित्त के हैं, छल कपट तो आपको छू भी नहीं गया। इस भोलेपन के कारण ही, आप सब पर विश्वास कर लेते हैं कि जैसे शील सनेह के निधान आप स्वयं हैं, उसी भाँति सबके सब ऐसे ही होंगे। यहाँ स्वभाव का दिग्दर्शन मात्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही अभिप्रेत है। दोहे से सम्बद्ध अग्रिम लीला की चर्चा यहाँ निष्प्रयोजन है।

एक अवसर पर श्रीलषणलालजी ने श्रीराघव स्वभाव विषयक एक बड़ा ही मार्मिक रहस्य समझाया है। वह यह कि–आप अपने स्वजनों के अवश्यम्भावी संकट को अपने ऊपर ले लेते हैं। उन्हें कष्ट का अनुभव नहीं होने देते। दृष्टान्त पहला—आपने भक्तराज अम्बरीषजी के श्रीदुर्वासा द्वारा प्रदत्त दश तिर्यगयोनियों में जन्म लेने के श्राप को, अपने ऊपर लेकर मत्स्य, कूर्म, वाराह आदि दश अवतार धारण किये।

जाको नाम लिये छूटत–भव–जनम–मरन दुख–भार।
अंबरीस हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दस बार ॥

श्रीविनय पत्रिका, ६८/५

दूसरा प्रसंग है श्रीविभीषणजी का। युद्ध में रावण ने आप पर प्राणघातिनी शक्ति छोड़ी थी। उसे श्रीराघवलाल ने अपनी ही छाती पर रोक कर, श्रीविभीषणजी के प्राणों की रक्षा की। अपने को भले कष्ट सहना पड़े, भक्त पर कष्ट नहीं आने देंगे।

पुनि दसकंठ क्रुध होइ, छोंड़ी सक्ति प्रचंड।
चली विभीषन सन्मुख, मनहुँ काल कर दंड ॥९३॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत विभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलाई ॥

तीसरा प्रसंग है—

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥

इस पंक्ति में 'सहि संकट' वाक्य खंड विचारणीय है। साधु सुखी करना तो आप सुख सिन्धु का स्वरूपगत स्वभाव है, किन्तु संकट सहने का क्या प्रयोजन? प्रयोजन यह कि साधु अपने अपने प्रारब्ध भोग रहे थे।

कोउ न काहु सुख दुखकर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

जब साधुजनों ने देवताओं के साथ मिलकर विपत्ति निवारण की प्रार्थना की, तो आपने उन सबों का सामूहिक कष्ट अपने ऊपर लेकर, वन लीला वाले कष्टों को स्वयं भोग लिया।

चौथे प्रसंग में श्रीलषणलालजी, स्वयं दृष्टान्त है। प्रसंग उस समय का है जब आप मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति से मूर्च्छित हो गये थे। श्रीहनुमतलालजी के द्वारा लाई गई संजीवनी जड़ी के उपचार से जब, आपकी मूर्च्छा भंग हुई, तो वानरी सेना की निराशा रूपी कुहू रजनी को परास्त करते हुये सहस्रांसु सौ सौ नवीन आशाएँ लेकर प्रगट हुये। श्री-सुग्रीवजी, श्रीविभीषण आदि सुहृदगण श्री लषणलालजी से पूछने लगे—कहिये बीरवर, अब आपके घाव में कैसा दर्द है? पहले तो श्री लषणलाल ने मौन द्वारा इसका उत्तर दिया। वारम्बार पूछने पर कहने लगे—

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।

पाइ सजीवन, जागि कहत यों, प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे, पाठ अरथ चरचा कीरै।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरै॥
तुलसी सुनि सौमित्र वचन सब, धरि न सकत धीरौं धीरै।
उपमा राम—लखन की प्रीति की, क्यों दीजै खीरै-नीरै॥

श्रीगीतावली ५/१५

अर्थात् आप लोग बार बार मुझ से घाव-पीड़ा का प्रश्न क्यों करते हैं? श्रीराघव स्वभाव को क्या आप लोग नहीं जानते? अपने आश्रितों को कब वे कष्ट भोगने देंगे? उन्होंने मेरी पीड़ा को मेरे ऊपर से हटा कर अपने हृदय पर धारण कर लिया है। पीड़ा की बात पूछनी हो. तो उन्हीं से पूछिये। इतना कहते कहते श्री लषणलाल श्रीराघवजी के पीड़ा निवारण स्वभाव की रीति विचारते हुये, ऐसे प्रेम मग्न हो गये, कि आपको वाह्य देह का भान भी नहीं रहा।

पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥
यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमौर॥

मैं तो उनका पढ़ाया हुआ सुग्गा हूँ। जैसा युद्ध करना सिखाया, वैसा किया और करूँगा? युद्ध कौशल मैं क्या जानूँ? सुग्गे भला पठित पाठ का अर्थ बतावें।

मैं तो उनका शेष हूँ। प्रभु शेषी हैं। मुझे अपनी निधि हीरा मान लें, उनकी स्वीकृति की बलिहारी है! हीरे को राजा धारण करते हैं, तो उसकी शोभा सुख वे ही जानें। जड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हीरा क्या बतावेगा ? हीरे प्राप्ति का सुख, नष्ट हो जाने का दुख राजा को होगा ? हीरे को इससे क्या मतलब ?

श्री लषणलाल जी के समान सर्वतोभावेन प्रपन्न तथा श्रीराघवजी के समान शरण्य ढूढ़ आइये, कहीं नहीं मिलेगा। दोनों की पारस्परिक प्रीति की उपमा दूध पानी के पारस्परिक प्रेम से देना व्यर्थ है—क्योंकि

जल पय सरिस विकाय, देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होंत रस जाय, कपट खटाई परत पुनि ॥

यहाँ की दिव्य प्रीति तो किसी प्रकार से भी फटकनी संभव नहीं। अब आगे हम श्रीभरतलालजी के द्वारा वर्णित श्रीराघव स्वभाव पर विवेचन करेंगे।

८—श्रीभरतोक्त राघव स्वभाव



श्रीभरतलालजी को विदेह परमहँसाचार्य श्रीमिथिलेश जी ने भी श्रीराघव स्वभाव मर्मज्ञता का प्रमाण-पत्र दिया है। 'तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि विदित रघुबीर सुभाऊ॥'

आपने स्वयं भी स्वीकार किया है कि—

"मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ।"

श्रीभरतलाल जी ननिहाल से लौट कर, श्रीअयोध्या जी आते हैं। यहाँ की परिस्थिति देखते ही, आप शोक समुद्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में डूब जाते हैं। पिता जी मुझे अनाथ छोड़ कर, अकाल ही में सुरपुर चले गये। मुझे आपके प्रस्थान कालीन दर्शन भी नहीं हुये, न आपने चलते समय मेरा सार सम्हार सब प्रकार से लायक रघुनायकजी के करकंज में ही सौंपा। अब क्या हो?

'चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥'

जब श्रीराघव का वन गमन सुना, तब तो आप वज्रा हत की भाँति मूर्च्छित होकर, धरणीतल पर गिर पड़े। जिससे सब प्रकार के हित की आशा की जाती है, उसी निज जननी की सारी विपत्ति वैसाही हुई है, और सो भी अपने ही निमित्त! सन्न से रह गये। काटो तो खून नहीं। चारो ओर से निराशा ही निराशा।

ऐसी स्थिति में परम सुजान श्रीभरतलाल ने सभी आपदाओं से सुरक्षा के लिये सर्व शरण्य, शरण सुखद, बिगड़ी बनाने वाले, श्री जानकी रमण जू की शरणागति ग्रहण करने का निश्चय किया। हर हालत में उन्हीं की शरण में हित है।

'जौं परिहरहि मलिन मन जानी। जौं सनमानहि सेवकु मानी॥
मोरे सरन राम की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥'

प्रपत्ति धर्म के परमाचार्य श्री भरतलाल जी से हमें शरणागति धर्म की दीक्षा लेनी चाहिये। सत्पात्र प्रपन्न के साङ्गोपाङ्ग सारे प्रयोजनीय लक्षण, आपही में एकत्र पाये जाते हैं।

आनुकूल्यादि संकल्पः—श्रीभरतलाल जी को इस गुरु आज्ञा में हित होत जँचा नहीं कि—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर वचन हित जानी॥'
'कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी।' हम जानते हैं, कि सामान्य धर्म की दृष्टि से तत्काल काम चलाऊ हित उसी में होता हो, जो इस समय गुरु तथा माता जी की आज्ञा हो रही है। परन्तु सामान्य धर्म ही सब कुछ नहीं है। जिनकी दृष्टि सर्वदा विशिष्ट प्रकार के भगवद्धर्म की ओर लगी रहती है, उन्हें विशेष धर्म के बाधक सामान्य धर्म सदा उपेक्षणीय ही जँचेगा। आपने सविनय गुरुजनों के इस आदेश को पालन करने में अनिच्छु हुये। आपका निश्चय है—

हित हमार सियपति सेवकाई। मैं अनुमानि दीख मन माहीं॥
आन उपायँ मोर हित नाहीं।

अतः आप गुरुजनों की सभा में आज्ञा की याचना करते हैं कि—

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू॥

गुरुजनों का रुख देखकर आपने निश्चय भी यही किया कि—

एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

२—प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्—शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये पाँचों प्रकार के विषयों में एक एक महान अनर्थकारी हैं। मृग तो कान के द्वारा नाद रस का लोभी होने से, व्याधे के हाथ प्राण गँवाता है। पतंगे दीप के लौ वाले रूप का आशिक होते हैं। उसी के साथ लिपटकर, प्राण गँवाते हैं। भौंरे कमल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पराग गंध के लोभ से रात में संपुटित कमल कोष में बन्ध जाते हैं। कभी-कभी हाथी उस कमल के साथ भौंरे को भी उदरस्थ कर लेता है। स्वच्छंद विचारन करने वाले मत्तगयंद स्पर्श सुख के लोभ से हथिनी के साथ स्वयं भी गर्त में पड़-कर, मानव जाति का कैदी बन जाता है। अब जीवन भर निठुर पिलवान के अंकुश का आघात सहते रहो। स्पर्शलोभ का फल सबों के लिये ऐसा ही दुखदायी होता है। राजाओं के लिये पाँचो विषय भोग एकत्र सुलभ हो जाते हैं।

कुरंग मातंग पतंग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥
गरुड़० २/२/१८

सर्वभोक्ता सर्वसमर्थ ईश्वर को ये भोग भले बाधक नहीं हो, परन्तु जीवों के लिये तो सतत दुखदाई हैं। श्रीभरत-लालजी ने सर्व सम्मति से प्राप्त राज्य सुख को भागवद्धर्म के प्रतिकूल मानकर त्याग दिया। श्री चित्रकूट वाली इष्ट आज्ञा से विवश होकर, आपको श्रीअयोध्या राज्य का संचा-लन सूत्र अपने हाथों में सम्हालना भी पड़ा, तो आपका सहज विरागी मन भोगों से सर्वथा अनासक्त बना रहा--

अवधराज सुरराज सिहाही। दसरथ धन लखि धनद लजाही॥
तेहिपुर बसत भरत बिनुरागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

३-रक्षयिष्यतीति विश्वासी—शरण्य के द्वारा सुरक्षा में दृढ़ विश्वास है श्रीभरतलालजू को। आपकी मान्यता है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहि कृपा बिसेषी॥
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥

जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥२/१८३/

चौथा अंग है शरणागति का आत्मनिक्षेप—सो संपत्ति को तो पहले ही से त्याग दिया है। क्योंकि आपकी मान्यतामें—

संपति सब रघुपति कै आही॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥

साष्टाङ्ग प्रणिपात में ही आत्मसमर्पण की पूर्णता मानी गई है।

पाँचवा अंग कार्पण्य है—अपनी दीनता हीनता आराध्य स्वामी से कह सुनाना ही कार्पण्य है। श्री चित्रकूट यात्रा काल—

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सब साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥

महीं सकल अनरथ कर मूला॥

शरणागति का छटवाँ अङ्ग है--गोप्तृत्ववरण अर्थात् शरण्य को ही अपना गोप्ता, रक्षक स्वीकार करना और वरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करना। सो श्रीभरतलालजी अपने सद्‌गुरु तथा इष्टदेव श्री-राघवजी दोनों ही को अपना गोता बनाते हैं—

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भलमोरा॥
गुर गोसाईं साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

परम सुघर प्रपन्न श्री भरतलाल जी अपने शरण्य में शरणागतोपयोगी गुण स्वभाव का अनुसंधान कर, उन्हें नीचे लिखे शब्दों में प्रगट करते हैं।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँन उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपने
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

यों सुधारि सनमानि जनु, किए साधु सिरमौर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरिदावलि बरजोर॥
२/२९९॥

श्रीभरतलालजी कहते हैं कि सर्व सुहृद होने के कारण, सबों की भलाई करते रहना, कृपासिन्धु रघुलालजी की कृपा-रीति है।

प्रान प्रान के जीवन जी को। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो है ! आप अपनी सुबानि अर्थात् सत्स्वभाव से विवश होकर, सबके हित साधन में निरन्तर लगे ही रहते हैं। परोपकार परायण रहने में ही आप अपनी महत्ता की सार्थकता एवं अपनी बड़ाई मानते हैं। श्रीभरतलालजी कहते हैं कि अपने परम प्रिय अग्रज तथा सेव्य स्वामी के नाते, मैं पक्षपात पूर्वक आपके सत्स्वभाव को अतिरंजन करके कहता होऊँ, तो इसके साक्षी वेद शास्त्र भी हैं। मेरे कथन का समर्थन निगमागमों के द्वारा एवं लोक चर्चा से भी तो होता है।

आप धर्म के साकार विग्रह हैं 'रामो विग्रहवान् धर्मः'। इसका यह माने यह नहीं कि आपका हितसाधन सुकृतमानोंतक ही सीमित हो। आप तो अधमातिधम का भी हित करते रहते हैं। आगे श्रीभरतलाल गये गुजरों की संख्या नौ गिना रहे हैं। अङ्कों में नौ अन्तिम अङ्क माना जाता है। इसके बहाने श्रीभरतलालजी के कहने का तात्पर्य कि पापवन्तों की परा-कष्ठा तक इसी वर्ग में आ गये। अब आप श्रीभरत्तोक्त नौ प्रकार के निकृष्टों जीवों की नीचे लिखी हुई सूची पर विचार करें।

१—कूर शब्द संस्कृति के क्रूर शब्द का अपभ्रंश है। अतः दया रहित दुष्ट स्वभाव वाले जीव क्रूर कहाते हैं।

२—कुटिल ऐसे छली को कहेंगे जो मुख से कुछ और बोले, मन में कुछ और रखे, करने समय और कर डाले। ऐसों का कौन विश्वास करे ?

३—खल निष्प्रयोजन दूसरे का अपकार करते रहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खल बिनुस्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥

४—कुमति मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र समझने वाले विपरीत बुद्धि के मनुष्य होते हैं।

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित जानहु रिपु प्रीता

५—कलंकी –निन्दनीय पापाचरण के कारण लोक समाज में बदनाम व्यक्ति कलंकी कहा जाता है।

६—नीच--धूएँ और धूल के समान अपने हित करने वाले की भी बुराई करने वाला--

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥
रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥

पुनः नीचे को पतंग समान खींचिये तो आकाश पर चढ़ जाय, ढील कर दीजिये तो गिर पड़े।

नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसी दास।
ढील किये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास॥
दो० ४०१

७—निसील-- उपकारी के प्रति भी शील संकोच न बरते, ऐसा दुष्ट स्वभाव वाला व्यक्ति।

८—निरीस-- नास्तिक अथवा गुरुजनों के शासन न मानकर, मनमाना नीच आचरण करने वाला व्यक्ति।

९—निसंकी-- गुरुजनों की आज्ञा के प्रतिकूल चलने वाला और लोक परलोक बिगड़ने का भय नहीं करने वाला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर गिनाये गये अधम प्राणी, अन्य जगह भले ही दंडनीय करार कर त्याग दिये जायँ, परन्तु श्रीराघव जू के दयामय दरबार में ऐसे गये गुजरे भी दयनीय हैं। आप इन के लिये भी शरण सुलभ हैं। यद्यपि प्रपत्ति विद्या के अभि-युक्तों ने क्लिष्ट साध्य विधियों का प्रतिबन्ध लगाकर, शरणा-गति उपाय को भी कठिन बना दिया है, परन्तु श्रीराघवजी के परमोदार दरबार में शरणागति अतिशय सुलभ है। जब ऊपर गिनाये गये महाकुपात्र भी आपकी शरण के अधिकारी माने गये हैं, तो औरों की कहा जाय?

उपर्युक्त नौ प्रकार के पतितों में कोई भी शरणापन्न होना चाहे और अपनी नीचता से लजाकर, आपके सम्मुख आने का साहस उसे न हुआ, तो कोई बात नहीं। आपके सहज विश्वासप्रवण कानों में कोई सुना दे कि अमुक व्यक्ति शरणार्थी बनकर बाहर खड़ा है। उसे तुरत शरणापन्न मान लेंगे 'तेउ सुनि सरन सामुहे आये।' यदि कोई उसका हितैषी, उसे समझा दे कि मन्दभाग! क्या छिपे छिपे फिरते हो? अरे! निकट में जाते भय होता हो, तो कोई बात नहीं! दूर से ही सही, प्रणाम तो कर ले। ऐसा सुनकर, वह दूर ही से केवल हाथ जोड़कर प्रणाम कर ले, सो भी केवल एक ही बार, बस हो गया। इसी में उसकी शरणागति की समस्त विधियाँ अन्तर्भूत हो गईं। वह श्रीराघव स्वजन बन गया, आज से।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकृत प्रनाम किहे अपनाये।

प्राणों को संकटपन्न देखकर, घोर शत्रु भी प्राण रक्षा की याँचना के निमित्त हाथ जोड़े, तो अपने कृपालु स्वभाव को चरितार्थ करने के लिये, आप उसे नहीं मारते।

बद्धाञ्जलि पुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यर्थमपि शत्रुं- परंतप ॥

श्रीवाल्मी० ६/१८/७

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है।

साष्टङ्ग दण्डवत प्रणाम करना शरणार्थी के लिये आवश्यक बताया गया है यथा—

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ॥

ऐसा न बने तो हाथ जोड़कर, प्रणाम ही सही, प्रणाम तो जरूरी है।

भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहैं ।
ततकाल तुलसीदास जीवन—जनम को फल पाइहैं ॥

श्रीविनय १३५/५

परन्तु उपर्युक्त शर्त लगाई गई हैं, प्रपत्ति विद्या के अभियुक्तों के द्वारा। स्वयं शरणागत वत्सल प्रभु तो इसकी भी अपेक्षा नहीं रखते। आप चाहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
सभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतं मम ॥

शरणार्थी केवल इतना ही कह दे कि प्रभो! मैं आप ही का शरणापन्न हूँ। बश, हो गई, उसकी सारी शरणागत विधि! उसके बाद का काम मेरा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके पश्चात् आप क्या करियेगा; दयामय ? अजी, उसी समय से उसकी ऐसी सुरक्षा करते रहेंगे कि देव, दानव, मानव आदि किसी भी प्राणी से उसे भय नहीं करना पड़े।

देखि दोष कबहु न उर आनि—

यह सब तो हुआ किन्तु क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी आदि व्यक्तियों का अमिट स्वभाव कहाँ जाय ?

खलउ करहि भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥

किसी ने फरियाद की प्रभो ! मैं पहले ही मना कर रहा था, ऐसे दुष्ट को शरण में न रखा जाय। आपने माना नहीं। वह नव शरणागत हम सभी प्रपन्न समाज की बदनामी करा रहा। आप ऐसी फरियादें करते रहें। शरणागत वत्सल को शरणागतों के अपराध सुनने को मानो कान ही नहीं है। सर्व द्रष्टा को मानो शरणागत व्यक्तियों के दोष देखने को नयन ही न हो।

साहिब होत सरोष, सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष, सपनेहु राम न उर धरे॥

दोहावली ४७।

इसी से तो कहते हैं कि आप शरणागतों के अनुचित स्वभाव को सदा सह लेते हैं। स्वभाव ऐसा ही पड़ा है।

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहि पावक की कलुपाई दही है।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, परलोगनि की विधि बोलि कही है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीस निसाचर की करनी न सुनी न बिलोकी नचित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौं ही अनैसी सुभायँ सही है ॥

कवि० ७/६

अर्थात् अग्नि परीक्षा लेने पर भी सती शिरोमणि श्री-सिय जू का धांबी के झूठमूठ के कलंक लगाने पर त्याग दिया, श्रीलखनलालजी को भी अन्त समय त्याग दिया है। सभी प्रकार से धर्माचरण करने वाले परम भागवत अयाध्या वासियों को भी पुरजन उपदेश के बहाने कुछ उपदेश करने की अपेक्षा हुई। परन्तु श्रीसुग्रीवजी, श्रीविभीषणजी के अप-राधमय करणी को न तो सुना, न देखा, न मन ही में कभी लाये।

सुनि गुन साधु समाज बखाने—

सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत। सुनत कहत फिरि गाउ ॥

सुनि सीतापति सील सुभाऊ।

पिछले प्रसंग में इस विषय पर बिवेचन हो चुका है। पुनः-

सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को, आदर अनुराग विसेखि ॥

श्रीविनय १६१/५

को साहिब सेवकहि नेवाजी—

अयोग्य सेवकों पर भी अपार कृपा करने की रीति श्रीराघव स्वभाव की ही विशेषता है। इस सम्बन्ध में श्री-कवितावली ७/1 के निम्नोद्धृत सवैया विचारणीय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बालि-सों बीरु बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे॥
राम-सुभाउ सुनें तुलसी हुलसै अलसी हम-से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेऊ गरीब नेवाज नेवाजे॥

आपु समाज साज सब साजी—

अपने कूर कुटिल खल आदि कोटि के शरणागत के विरुद्ध फरियाद सुनते सुनते नाकोदम होने पर, आप बिचारते हैं कि चलो इसमें संत समाज में पाये जाने वाले लोक विलक्षण गुण गण भरकर, साधु बना लें। आपको क्या देर?

करौं सद्य तेहि साधु समाना।

निज करतूति न समुझिअ सपनें—

किसी ने आपकी प्रशंसा कि श्रीअवधलाल, अरे! आपने तो कृपा की हद कर दी। आपका अमुक शरणागत कितना बड़ा दुष्ट था पहले! प्रणाम ही मात्र तो किया. और क्या साधना की उसने? आपने उसे अपना सेवक मान लिया। उसमें ऐसे दिव्य गुण गण सेंतमेंत में दे डाले, जो जन्मान्तरों के क्लिष्ट साधनों से भी प्राप्त होने दुर्लभ थे।

आपने कहा कि चलो जी, बेचारे शरणागत के लिये मैंने किया ही क्या? तुम लोग तो ऐसे ही तिलका ताड़ बनाया करते हो। यह भी कोई उपकार है? यथार्थ बात तो यह है कि उस बेचारे के लिये जितनी भलाई मुझे करनी थी, सो मुझ से बना नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेवक सकुच सोच उर अपने—

आपके आदर्श परिकरों में पाये जाने अमोल गुणगणों की अपेक्षा इस नवागत शरणागत ने अपने में आप द्वारा प्रदत्त गुणों में कभी देखी तो बेचारा, उनके समक्ष संकोच में पड़ गया। तब तो आपको बड़ी चिन्ता हुई कि यह अभाव क्यों रहने दिया उसमें? इतना और मुझे कर देना था कि वह किसी बात का संकोच न करे। और भी—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि, दिये दसमाथ।
सोइ संपदा विभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

संकोच इस बात का कि लंका दे तो रहे हैं, किन्तु है तो यह जली हुई। यद्यपि रावण द्वारा उसका बहुत कुछ जीर्णोद्धार हो चुका था।

सो गोसाईं नहि दूसर कोपी—

त्रिदेवों की तो बात ही छोड़िये, अन्य पूर्णब्रह्म कहाने वाले सगुण ब्रह्म भी कोई ऐसे शरणागतवत्सल नहीं होंगे, जैसे श्रीरघुलालजी—

नाहिनै कोउ राम सम ममता प्रनत पर जाहि॥

श्रीविनय २१६/१

भुजा उठाई कहैं पन रोपी— \

श्रीभरतलालजी भुजा उठाकर प्रतिज्ञापूर्वक, श्रीरघुलाल जू को अप्रतिम प्रणतपाल घोषित करने की प्रौढोक्ति करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पसु नाचत सुक पाठ...

भला बताइये तो सही, कि बानर भालु, घोड़ी घोड़ा आदि पशु यदि नृत्य कुशल दिखाई पड़ते हैं, तो इसमें श्रेय होना चाहिये, उस नर्तक पशु का, याकि सिखाने वाले का ? कहना पड़ेगा न कि गँवार पशु क्या नाचना जाने ? बलिहारी है सिखाने वाले की ! उसी प्रकार, राम नाम सस्वर रटने वाले सुग्गे की क्या प्रशंसा ? खूबी तो सिखाने वाले की है। इस दृष्टान्त के द्वारा श्रीभरतलालजी कहते हैं कि—

देखो न, कहाँ मैं अपराधिनी मा के गर्भ से जायमान, सहस्रों अपराध से भरा कुसेवक, कहाँ आपने इतने गुण गण दे दिये होंगे कि आज मुझे लोग संतशिरोमणि कहने लगे हैं। श्रीगोस्वामीजी की भी उक्ति इसी प्रकार की है—

हौं तो सदा खरको असवार तिहारोइ नाम गयन्द चढ़ायो ॥

श्रीकवित्ता० ७/६०/४

क्या कहा जाय ? श्रीराघव जू का स्वभाव ही ऐसा पड़ा है कि—

करत गिरि ते गरु तृन तें तनक को ॥

श्रीकवि० ७/७३/४

श्रीभरतलालजी को निश्चय है कि कोमल हृदय वाले दयार्द्र शरणागतवत्सल राघव अपने स्वजनों के अवगुण पर कभी ध्यान नहीं देते।—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् प्रपन्नों के लिये तो आप कल्पवृक्ष ही हैं। शरण सम्मुख होने पर, आप उसे कभी किसी अर्थ के अभाव में निराश नहीं होने देते। कल्पवृक्ष का स्वभाव होता है कि उसे कोई पहचान ले, तो उसकी छाया में जाते ही, उसकी सारी चिन्ता हर लेगा। मागने पर सब कुछ दे डालेगा। मांगने वाले के पात्रापात्र पर तो कभी विचार ही नहीं करता। राजा हो, रंक हो, भला हो, बुरा हो, चाहे जैसा भी याचक हो, उसे मुँह माँगा देने की आदत पड़ी हुई होती है, उसमें। यही बात श्रीराघव जू में भी घटित होती है।

देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ॥

जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।

मागत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच॥

श्रीमानस २/२६७।

एकै दानि सिरोमनि साँचो।

जो जाच्यो सोइ जाचकता बस, फिरि बहु नाच न नाचो॥

सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि, कोउ न देत बिनु पाये।

कोसल पालु कृपालु कलप तरु, द्रवत सकृत सिर नाये॥

हरिहु और अवतार आपने, राखी वेद बड़ाई।

ले चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल-मिताई॥

कपि सबरी सुग्रीव विभीषन, को नहि कियो अजाची।

अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस पिसाची॥

श्रीविनय १६३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६-श्रीराघव स्वभाव मर्मज्ञा श्रीमैथिली जू

—:❀:—

श्रीमैथिलीजी श्रीहनुमानजी के प्रति कहती हैं कि सत्य पराक्रमी श्रीरघुलालजी केवल देना ही जानते हैं, बदले में कुछ लेना नहीं चाहते। वे सदा सत्य बोलते हैं। अपने प्राणों की रक्षा के लिये भी कभी झूठ नहीं बोल सकते।

'दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयन्न चानृतम्।
अपि जीवित हेतोर्हि रामः सत्य पराक्रमः ॥२॥'

बाल्मी० ५/३३/२५

पुनः आप उन्हीं से कहती हैं कि श्रीहनुमान् श्रीलक्ष्मणाग्र का हृदय अत्यन्त कोमल, है, पर दुखकातर एवं द्रवणशील है। आप करुणा वरुणालय हैं। उन्हें क्रोध तो होता ही नहीं। उनका हृदय सर्वदा शीतल बना रहता है।

सुनु हनुमंत! अनंत बंधु करुना सुभाव सीतल कोमल अति।

श्रीगीतावली ५/६।४

ऐसे तो समस्त त्रीलोकी जीवों को सुख देने वाले एक मात्र श्रीराघव जू ही हैं—

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥

परन्तु अपने सेवकों को तो भाँति भाँति का सुख देते रहना, आपका सहज स्वभाव बन गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सहज बानि सेवक सुखदायक ॥'

श्रीमानस ५/१४/५

कोऊ नेह राखै ताहि देह दैकै राखै भद्र
नेकहू न नाखैं मृदु भाषैं बात चायन की।
कोऊ चूकि जावै ताको चूक न चलावै
जासों थोरो बनि आवै जस गावैं सभा भायन की ॥
जैसो जन चाहैं तासों तैसोही निबाहैं प्रेम
प्रेम तो अथाह है 'प्रधान' मोद दायन की।
देख्यौ सुन्यौ कोउ न कान, ऐसो गुन को निधान
कहाँ लौं करौं बखान राम के सुभायन की ॥

श्री अयोध्या के नागरिकों द्वारा स्वभाव कथन

पुरवासी परस्पर में वार्तालाप करते हैं—

श्रीराघव जू का स्वभाव हम लोग लड़कपन से ही देखते आये हैं। आप परम प्रेम पारखी हैं। प्रीति नीति का निर्वाह तो एकमात्र आपही जानते हैं। बड़े शीलवान हैं। आपका स्वभाव अत्यन्त संकोची है। सदा प्रसन्न मुख रहते हैं। आपके सौम्य नयन कमल से सदा शील चूता रहता है। आपका स्वभाव सदा से निश्छल तथा भोलापन युक्त रहता आया है।

लरिकाइहि ते रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिन्धु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥

२।२७४।५६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०-श्रीमुख निज स्वभाव कथन



अब आगे हम श्रीमुख कथित स्वभाव विशेषता पर विचार करने जा रहे हैं।

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाऊ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति, तुम्ह सन कौन दुराउ॥
सब विधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाँउ।
आयो सरन भजौं न तजौं तिहि, यह जानत रिषि राऊ॥
जिन्ह के हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ।
तिन्हहि लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ॥
पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं, सकल सभा पतिआउ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम, कपट प्रीति बहि जाउ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन, प्रेम मगन मन चाउ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब, ऐसे प्रभु कहँ गाउ॥

श्रीगीतावली ५।४५

उपर्युक्त पदोक्त श्रीमुख वचन श्रीविभीषणजी के शरणापन्न होने के समय प्रकाशित हुये हैं। अतः यह स्वभाव कथन प्रपन्नों के प्रति बर्ते जाने वाले ही हैं। यहाँ स्वभाव के सहज विशेषण का तात्पर्य नित्य स्थायी स्वरूपसिद्ध स्वभाव से है। ऐसे तो हमारे प्रियतम रघुनन्दन कभी झूठ बोलते ही नहीं, तब यहाँ सत्य की दुहाई देने की क्या आवश्यकता है? श्रोताओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को श्रीमुख कथन में दृढ़ विश्वास जमाने के लक्ष्य से ही यहाँ सत्य शब्द का प्रयोग हुआ है। औरों को अधिक से अधिक आदर सम्मान देना, शीलसिन्धु श्रीराघव के स्वभाव की अपनी विशेषता है।

इसी से श्री सुग्रीवजी के लिये वानराधिराज का सम्बोधन तथा श्रीविभीषणजी के लिये लङ्कापति का आदर पूर्ण सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है। मजा तो यह है कि जीव एवं ब्रह्म में आकाश पाताल का अन्तर होते हुये भी, आप इन दोनों प्रपन्नों को अपनी बराबरी श्रेणी वाले सखा बता रहे हैं। यदि हम आपकी माधुर्य लीला दृष्टि से ही इनके सम्बन्ध का विचार करें, तो भी धर्मशास्त्र की सम्मति से ये दोनों आपके पुत्र तुल्य हैं।

जनकश्चोपनेता च यश्च कन्या प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥

चाणक्य नीतिदर्पण

अर्थात् जन्म देने वाले, उपनयन संस्कार देने वाले, कन्या देने वाले श्वसुर, अन्न देकर शरीर का पालन पोषण करने वाले तथा संकटापन्न भय से रक्षा करने वाले, ये पाँच पिता तुल्य माने गये हैं। श्रीराघवलाल जू ने श्रीसुग्रीव को वाली के भय से तथा श्रीविभीषण को रावण भय से रक्षा की है। अतः धर्मतः ये दोनों आपके पुत्र तुल्य हैं, तब सखा का सम्बोधन मानदान के उद्देश्य से ही तो किया गया है। यद्यपि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवचन के श्रोता इस पद में कथित 'सकल सभा पतिश्राउ' हैं, परन्तु प्रधान प्रपन्न इस समय श्रीसुग्रीवजी, एवं श्रीविभीषणजी हैं, अतः इन्हें ही प्रधान श्रोता मानकर, इन्हीं से सुनने का आग्रह किया जा रहा है।

राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥

'तुम सन कौन दुराउ'

आपसे क्या छिपाना है, यह कथन इन दोनों के प्रति आपकी अत्यधिक प्रीति का सूचक है। प्राकृत प्रीति के भी छः लक्षण कहे गये हैं। प्रीतिमान मित्रों का पारस्परिक स्वभाव होता है।

१—अपनी वस्तु मित्र को देवे। तथा
२—मित्र की दी हुई प्रीतिभेट को निस्संकोच स्वीकार कर लेवे।
३—मित्र के मन के गोप्य मर्म सुने तथा।
४—अपनी गोप्यवार्ता और से भले छिपावे, किन्तु मित्र से तो कहना ही चाहिये।
५—मित्र के घर में भोजन करना। तथा
६—मित्र को अपने यहाँ भोजन करना।

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति लक्षणम्॥

अगली पंक्ति में शरणागति का अधिकार प्राप्त करने के लिये चारगुण शरणार्थी में होना आवश्यक बताया गया है।

१—शरणार्थी अपने को सब प्रकार से हीन समझे। ऽहा=
[illegible] धातु से निष्पन्न हीन शब्द का भाव है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरणार्थी सब प्रकार के रूपाभिमान को त्यागने वाला होना चाहिये। यथा

ताहि तें आयो सरन सबेरे।
ग्यान विराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ! न मेरे॥

श्रीविनय १८७।१

२—शरणार्थी को सब प्रकार से दीन भी होना चाहिये। नष्ट भावार्थक ऽदी धातु से निष्पन्न दीन शब्द का भाव है जिसकी शरण्येतर अन्यान्य सुरनर, मुनि–नाग किन्नरों के आश भरोस नष्ट हो चुके हों। यथा

मुनि अगस्त कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मनक्रम वचन रामपद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥

दीन हीन शब्द का प्रयोजन है त्रैकाण्ड अन्तर्गत पुरुषार्थ प्रधान कर्म मार्ग से चलने में जीव की असमर्थता का ज्ञापन।

३—जड़मति, से तात्पर्य है ज्ञानाभिमानशून्य शरणार्थी। अपने को बुद्धिहीन समझकर, 'ज्ञान अखंड एक सीतावर' की शरण में आने वाला अधिकारी।

४ -जाको कतहुं न ठाउँ—शरणार्थी के मन में निश्चय होना चाहिये कि हमारे समर्थ करुणावरुणालय रक्षक के चरणाश्रय के अतिरिक्त हमारे लिये सुरक्षित स्थान दूसरा है ही नहीं। इसका भाव है कि संसार से डरा हुआ जीव अपने मन में निश्चय करे कि अन्य साधनों से हमारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभीष्ट सिद्ध होगा नहीं, श्रीराघवजी ही हमारे एकमात्र समर्थ रक्षक हैं, इस प्रकार महाविश्वास पूर्वक उनसे शरण की याचना करना-यह शरणागति है। इसी को आप प्रपत्ति भी कह लीजिये।

अनन्य साध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।
तदेकोपायता याञ्चा प्रपत्तिः शरणागतिः॥

—श्रीभरताचार्य।

श्रीमुख वाणी है कि उपर्युक्त चारों शरणागति लक्षण विशिष्ट कोई भी व्यक्ति मेरी शरण में आवे, तो मैं सद्यः उसके सार सम्हार एवं सुरक्षा का भार (भजौं) अपने कर कंजों में ले लेता हूँ। इस प्रकार से एक ही बार के स्वीकृत जीव पीछे कोटि कोटि अपराध भी करते रहें, तो भी मैं उन्हें नहीं त्यागता। आप अपने इस स्वभाव के जानकार आदि-काव्य श्रीरामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकिजी को बताने की कृपा कर रहे हैं। महर्षि वाल्मीकिजी ने अपने श्रीरामायण नामक महाकाव्य में शरणागति धर्म का ऐसा सुन्दर प्रतिपादन किया है कि 'श्रीमद्रामायणे दीर्घ शरणागति' यह कथन एक लोकोक्ति बन गई।

श्रीराघव स्वभाव है कि आप अपने स्वजन, परिजन पुरजन के अपराधों पर, उनके लिये दंड व्यवस्था अवश्य करते हैं, परन्तु शरणागतों के लिये आप उनके अदोषदर्शी बन जाते हैं। उनके अपराधों के लिये कोई दण्ड जैसे आपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्यायालय में है ही नहीं। दृष्टान्त के लिये श्रीमैथिलीजी को लीजिये। एक सामान्य रजक द्वारा आपके प्रति मिथ्या लोकापवाद सुनकर, अग्नि परीक्षा द्वारा निष्कलंक सिद्ध श्री-मैथिलीजी को आपने त्याग दिया। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अनुसार लीला संवरण के पूर्व श्रीदुर्वासा के शाप भय से विवश होकर, किंचित आज्ञा भंग होने पर, आपने परमप्रिय, सदैव मनोनुकूल सेवा में तत्पर रहने वाले श्री लषनलालजी को भी त्याग दिया। अयोध्या के नागरिकों में भक्ति विषयक त्रुटि देखी होगी, तभी तो उन्हें बुलाकर भक्ति विषयक मर्म सिखाया गया। इस सम्बन्ध में श्रीमानसोक्त पुरजन उपदेश प्रसिद्ध है। किन्तु

जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि बाली।सोइ सुकंठ फिर कीन्ह कुचाली
सोइ करतूत विभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥

इसी से तो कहते हैं कि 'राम सदा सरनागत की अन खौंही अनैसी स्वभाव सही है।

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहि पावक की कलुषाई दही है।
धर्म धुरंधर बंधु तज्यो पुरलोगनि की विधि बोलि कही है ॥
कीस निसाचरकी करनी न सुनी,न बिलोकी,न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाव सही है ॥

श्रीकवितावली ७/६

अब शरणागति के सर्वोत्तम अधिकारी का लक्षण श्रीमुख से बताया जा रहा है। सर्वोत्तम अधिकारी वह है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो एकमात्र आप ही को अपना सर्व विध हितैषी हृदय से दृढ़ निश्चय कर चुका हो।

'जिनको हौं हित सब प्रकार। यथा—

रामु हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुत, स्वामि, सनेही।
राम की सौंह, भरोसो है रामको राम रंग्यो, रुचि राच्यो न केही।
जीअत राम, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जिऐ जग में 'तुलसी' न डोलत और मुए धरि देही॥

श्रीकवितावली ७/३६

चित नाहिन आन उपाय—का भाव है—

'जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे॥
कौने देव बराई बिरद हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनापौ हारे॥

श्रीविनय १०१

उत्तम अधिकारी का मोटामोटी लक्षण बताकर, अपना स्वभाव बता रहे हैं कि ऐसे शरणापन्न की आवश्यक रक्षा के लिये मुझे नरलोक में लीला शरीर भी धारण करना पड़ा तो मैं तुरत अवतरित हो जाता हूँ। उनकी रक्षा में अपनी वेद मर्यादा को मिटाने का अपयश भी मिले तो भी मैं परवा नहीं करता। यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपि सुग्रीव बंधु-भय व्याकुल, आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जनके हत्यो बालि, सहि गारी॥
ऐसे राम दीन हितकारी।

श्रीविनय १६६/७

उपर्युक्त कथन के जीते जागते प्रमाण हैं श्रीप्रह्लादजी। भक्त शिरोमणि प्रह्लादजी के चरित पर विचार करने पर उत्तम शरणागति के अधिकारी के सारे लक्षण उनमें घटित होते हैं। तभी तो श्रीराम-नाम वाच्य श्रीराघवजी ने उन्हीं के लिये श्रीनृसिंह रूप धारण किया। श्रीप्रह्लाद का भगवन्नामों में एकमात्र राम नाम ही का जप करना, पुराण प्रसिद्ध है। अतः जिसका नाम जपा जाय, उसी नामी देवता का प्रगट होना श्रुतिसिद्ध है। अतः श्रीनृसिंह विग्रह आपही का रुपान्तर है। ऐसो विकराल रूप बनाने में कहाँ रहा आपका सौन्दर्य माधुर्य सुधासार विश्वविमोहन रूप? कहाँ रहा आपका क्रोध शून्य सौम्य सुशीतल स्वभाव? इन दोनों बातों का सुयश तो मिट ही गया। स्मरण रखना है कि देवता लोग भी हिरण्य कश्यप के अत्याचार से व्याकुल होकर, रक्षा के लिये आरत प्रार्थना बहुत पहले से करते आ रहे थे। कहाँ उनकी सुनवाई हो रही थी? अनन्य भाव से शरणागत हो देवगण तब तो सुनवाई हो।

सहे सुरन्ह बहु काल विषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥

श्रीविभीषणजी के प्रति भी श्रीमुख बचन है—

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब हम प्रस्तुत विवेच्य पद के श्रीमुख कथित वचन के अन्तिम अंश पर विचार करेंगे। इस सर्वान्त कथन में कुछ मार्मिक वाक्य खंडों पर, समुचित विचार करना अपेक्षित है।

पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हैं।

भुजा उठाकर कही हुई बात प्रतिज्ञा कोटि की होती है। यथा—

निसिचर हीन करौं मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।

सत्य प्रतिज्ञ राघव जू के प्रतिज्ञा पूर्वक कथित वचन अवश्य विश्वसनीय हैं। 'सकल सभा पतिआउ'—से भाव है योजनों में फैले हुये समस्त वानर वाहिनी ही आपकी सभा के श्रोता समाज है। किन्तु उपलक्षण से यह कथन समस्त शरणागत जगत के लिये कहा गया मानिये। शरणागत में इस प्रामाणिक श्रीमुख वचन को महाविश्वास पूर्वक गाँठ बाँधकर जोगाना चाहिये।

नहि कोउ प्रिय मोहि दास सम—

इस वाक्य खंड में प्रयुक्त दास शब्द मधुर, वात्सल्य, सख्य, दास्य और शान्तभाव वाले पाँचों भाव वालों में व्यापक मानना चाहिये। ब्रह्म जीव के मध्य चाहे जो सम्बन्ध हो, अपने अपने सम्बन्धानुरूप ब्रह्म सेवा तो जीव मात्र का धर्म है।

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।

मधुर भाव के कान्ताभाव वाले अपने पति की दासी ही अपने को मानते हैं? भ्रातृ सम्बन्ध वाले श्रीभरतलालजी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हित हमार नियपति सेवकाई।' 'सब तें सेवक धरम कठोरा।' रह कर भातृ भाव से सेवा करना ही अपना धर्म बताते हैं।

बाल सखा सुन हितँ हरषाही। मिमि दस पाँच राम पहि जाईं॥

श्रीमानस २/२४/१

ये भी यही चाहते हैं कि--

'सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥'

यदि यहाँ दास शब्द का अर्थ केवल दास्यभाव के भक्त को ही मानियेगा तो ऊपर "सुनहु सखा कपिपति लंकापति" में दोनों प्रधान श्रोताओं को सखा कह कर, उन्हें दासों की अपेक्षा न्यून कोटि के प्रेमास्पद मान लिया जायेगा। श्रीराघव स्वभाव है कि आप जिससे वार्तालाप करेंगे, उसके हृदय में अपना सर्वाधिक प्रीतिपात्रता का विश्वास जमा देंगे। अतः दास का अर्थ यहाँ सभी भाव वाले भक्तों में व्यापक सेवक मानना पड़ेगा।

कपट प्रीति वहि जाउ—

इस वाक्य खंड का अर्थ समझने के लिये हमें श्रीमुख कथित मानसोक्त निम्नोद्धृत पंक्तियों पर भी विचार करना चाहिये।

'कोटि विप्र वध लागहि जाहू। आए सरन तजउँ नहि ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ठ हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छलछिद्र न भावा॥'

श्रीमानस ५/४४/१-५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपर्युक्त कथन का निष्कर्ष यही है कि शरण सनमुख होते ही शरणार्थी के हृदयगत छल कपट स्थूलतः स्वतः मिट जाते हैं। छल छिद्र वाले की दिव्य दरबार तक मानसिक पहुँच होना भी दुर्लभ है। रही सूक्ष्म कपट की बात। सो शरण सम्मुख आने पर प्रभु पद प्रीति की बाढ़ में बह भी जाती है।

'उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।'

"अतः कपट प्रीति बहि जाऊ" आप की मंगल कामना शरणागतों के प्रति समझना चाहिये, कि इनके कपट हमारे प्रति उमगी हुई प्रीति सरिता की बाढ़ में बह जावे। यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। भला, आप की रुचि को अन्यथा कर देवे, ऐसी भी कोई शक्ति है त्रिलोकी में?

उपर्युक्त विवेच्य पद तो श्रीविभीषणजी के शरणापन्न होने के अवसर पर ही श्रीमुख से कहा गया था। अतः श्री-विभीषण जी सुन कर ऐसा मानने लगे कि यह हमारे प्राण-नाथ रघुनाथ जी का स्नेहोद्गार मेरे लिये खाश कर प्रगट हुये हैं। तभी तो सुनकर प्रेम मग्न हो गये।

"सुनि रघुपति के वचन विभीषन प्रेम मगन मन चाउ।।"

अब हमारे वैष्णवाचार्य सिरमौर श्रीगोस्वामि पाद का इस सम्बन्ध का सिद्धान्त वचन भी सुन लीजिये। आप का आदेश हो रहा है कि अजी, इसी विशिष्ट स्वभाव वाले मधुर मनोहर इष्टदेव का शुभ नाम रटते रहो। गुण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशिष्ट स्वभाव चिन्तन, गान करने वाले भी शरणागत ही माने जायेंगे। अतः उन्हें सकृदेव प्रपन्नाय—वाले अभय वचन पर विश्वास करके सभी का भय त्याग देना चाहिये। शरणागतों पर उनकी कृपापूर्ण छत्रच्छाया जो है।

जौं पै कृपा रघुपति कृपालु की, बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥
... ...
तुलसि दास रघुवीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै॥
श्रीविनय १३७

अपने इष्ट व्यतिरेक और 'आस विश्वास भरोसो' तो जीव की जड़ता है।
श्रीविनय १०३

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहाँ विस्वासा॥
श्रीमानस ७/४६/२

यह तो हुई श्रीगीतावली में पठित निज स्वभाव कथन विषयक श्रीमुख वाणी। ऐसे ही श्रीमुख वचन श्रीमानसजी के सुन्दर काण्ड के दोहा ४७ के पश्चात् आते हैं। लगे हाथ हम उस पर भी विचार करेंगे। यह चर्चित मानस उद्धरण निम्नांकित रीति से पठित हैं।

मानस उद्धरण सामान्य प्रपन्न विषयक—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै समय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनहु सखा—श्रीराघवलालजी ने स्वयं राजकुमार होने के कारण, बन लीला में तीन राजाओं को अपना सखा बनाया है।

१—श्रीनिषादराज गुहजी को—

कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥
२/८८/८

पीछे श्रीलषनलाल ने भी इन्हें सखा कहा—

सखा समुझि अस परिहर मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥

श्रीसुमंत्रजी ने भी इन्हें श्रीराम सखा ही माना है-

राम सखा तब नाव मँगाई। श्रीवसिष्टजी—

भरतहि कहेउ बुझाई मुनीसा। राम सखा सुनि स्यंदन त्यागा॥

२—दूसरे सखा आपके कपिराज श्रीसुग्रीवजी हैं-

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। ४/७/१०

सखा वचन मम मृषा न होई॥ ४/७/२३

३-तीसरे आपने लंकेश श्रीविभीषणजी को सखा माना।

सखा धर्म निबहइ केहि भाँती। ५/४६/५

परन्तु यहाँ श्रीबिभीषणजी को ही सम्बोधित करने के लिये सखा कहा है। आप श्रीमुख स्वभाव कथन के तीन और स्वभाव जानकार समर्थक बताते हैं ?

१—श्रीभुशुंडिजी, २—श्रीशंकरजी, ३—श्रीगिरिजाजी भी। श्रीभुशुंडि एवं श्रीशम्भु दोनों अनन्य रामोपासक हैं। अतः ये दोनों श्रीराम स्वभाव के विशेषज्ञ हैं। अतः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उमा रामा स्वभाव जेहि जाना। ताहिभजन तजि भाव न आना।।

इस कथन के अनुसार भगवान् शंकर--

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती ।।

श्रीभुशुंडिजी भी स्वभाव के ज्ञाता हैं, जैसा कि आपने कहा है कि--

अस सुभाउ कहुँ सुनहु न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।।

अतः उनके लिये--'तजि हरि भजन काज नहिं दूजा।' श्रीगिरिजा के नाम के साथ ऊ प्रत्यय बताता है कि ये भी आंशिक श्रीराम स्वभाव ज्ञाता हैं। आंशिक इस लिये कि आप का इष्ट भाव दो जगह बँटा है--

१-- पतिव्रता होने के नाते आप अपने पतिदेव भगवान शंकर जी को भी अपना आराध्य इष्ट मानती हैं, दूसरे उनकी सहधर्मिणी होने के नाते, आप भी उनके साथ श्रीराम भजन करती हैं।

सहस नाम सम सुनि सिवबानी। जपति सदा पिय संग भवानी।।
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ।।

शरणापन्न होने का अधिकारी कौन? इस सम्बन्ध में आपकी छूट है कि चाहे कितना भी बड़ा पातकी क्यों न हो, सभी अधिकारी हैं? यहाँ पाप की पराकाष्ठा बताने के लिये 'जौं नर होइ चराचर द्रोही।' तक को अधिकारी माना। पहले कह चुके हैं--

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आएँ सरन तजउँ नहि ताहू।।
५/४४/१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीविभीषणजी को स्वयं भी विश्वास है तथा उसी के अनुसार आपने रावण को भी समझाया है--

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहिं लागा॥
५/३६/७

प्रस्तुत कथन में चराचर द्रोही को शरणागति का अधिकारी कहा गया है। विचारना है कि दूसरे से द्रोह करने वाले पर द्रोही के ऊपर नाना प्रकार के भय, संकट आते हैं। अतः 'पर द्रोही की होहिं निसंका'॥ ७/११७/२। चराचर द्रोही पर आपत्ति का वज्र गिरना स्वाभाविक है। अतः वह अपने ऊपर यकायक अटल और अपने प्रयास से दुर्निवार विपत्ति को आया देखकर भयातुर होकर किसी समर्थ विपत्ति निवारक की खोज करता है। विशेष जानकार सन्तों के मुख से सुनता है।

'रघुपति विपति दवन।
परम कृपालु, प्रनत प्रतिपालक, पतित पवन॥'
श्रीविनय २१२

तब वह भयातुर शरणार्थी हतोत्साह होकर, आपकी शरण में आता है। यहाँ 'आवे समय सरन तकि मोही।' का भाव है कि शरणापन्न होने के लक्ष्य (तकि) से आवे और अनन्यभाव से एकमात्र मेरी ही शरण में आवे। 'मोही' का यही तात्पर्य है।

यहाँ शरणागति की विधि में तीन शर्तें रखीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१- शरणार्थी माथे पर आई हुई विपति से संत्रस्त हो। भले वह बारबार जन्म मरण की विपत्ति से भयभीत हो, या अपने पापों को विचार कर यमयातना की आशंका से भयभीत हो, शरणापन्न होने के लिये भय की स्थिति आवश्यक बताई गई।

२- 'सरन तकि' का भाव है, केवल रक्षा पाने के उद्देश्य से ही आवे।

३- मोही से शरण्य में अनन्य विश्वास होना आवश्यक है। कई रक्षकों को एक साथ वरण करने पर, कोई भी रक्षक उसकी रक्षा का पूरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेंगे। अतः एक ही रक्षक पर पूरी निर्भरता, उसी में दृढ़ विश्वास जमाना आवश्यक है।

"तजि मद मोह कपट छल नाना"

इस वाक्यखंड के यथार्थ भाव समझने में बहुत से मानसानुरागी भूला करते हैं। उनका कहना है कि शरणार्थी को शरणापन्न होने के पहले ही नाना प्रकार के मद, मोह, कपट, छल को त्यागना पड़ेगा। इन दुर्गुणों को लेकर शरणापन्न होना चाहेगा, तो उसे शरण में स्वीकृति ही नहीं होगी। परन्तु थोड़ी गंभीरता से विचार करने पर, ऐसा अर्थ मानना असंगत जान पड़ता है। भला विचारिये तो सही, जो थोड़ी देर पहले तक चराचर द्रोही था, उससे आप क्षण-मात्र में बड़ा ही दुर्मोच मोह, मद छल, कपट छोड़ने देने की आशा क्यों कर रहे हैं? बाप रे! ऐसी शर्त रखियेगा, तो हम लोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरणागति उपाय से एकदम निराश हो जायेंगे। दूसरी बात यह है कि जो शरणागतों के शरणापन्न होने के बाद के अपराधों की अपेक्षा करते हैं, वह पहले ही से ऐसी शर्तें कैसे लगायेंगे? तब आप पूछ सकते हैं कि तजि शब्द क्या दूसरा अर्थ होगा? प्रश्न बड़ा ही युक्तियुक्त है। सुनिये।

तजि संस्कृत के ऽत्यज् धातु का हिन्दी तद्भव रूप है। संस्कृत कोश में √त्यज् धातु का अर्थ छोड़ना, विदा करना विरक्त होना, बच निकलना, पीछा छोड़ना, ध्यान न देना आदि अनेक अर्थ लिखे हैं। यहाँ ध्यान न देना अर्थ ही समीचन है तथा ग्राह्य भी है। शरणार्थी में ऊपर गिनाये गये मद, मोह, कपट, छल नामक चार ही अवगुण क्यों, कोटि अवगुण भरे होते हैं, परन्तु बलिहारी है परम कृपालु एवं उदार शरण्य श्रीराघवजी की!-आप शरणागत के दोषों पर ध्यान ही नहीं देते। चार ही विकार इसलिये गिनाये गये कि चराचर द्रोही में इन चारों का प्राचुर्य होता है, गौण रूप में और भी अनेकानेक दोष रहेंगे ही।

करउँ सद्य तेहि साधु समाना—

सद्य का अर्थ तुरत तत्काल ही। अर्थात् शरणागत को आप तत्काल ही साधु समान बना देते हैं। इससे शरणागति को सिद्धोपाय कहा गया। अर्थात् उपायारंभ करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है शरणागित से। कर्म, ज्ञान, उपासना में ऐसी सद्यः फलोत्पादिनी शक्ति नहीं है। इनमें से तो दीर्घकाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यापी अनेक श्रम साध्य साधनों की अपेक्षा होती है। शरणागति में बीजारोपण करो और उसी समय उसका फल तैयार। आस्वादन करो, कितना करोगे। देखा न आपने? शरणागति का चत्मकृत प्रभाव हृदयङ्गम करने योग्य है। इसी उपर्युक्त कथित शरणागति धर्म से मिलता जुलता श्रीगीता के नवें अध्याय के ३० और ३१ वाँ श्लोक हैं।

"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ ३०
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥" ३१

इस प्रसंग में आये हुये भजते धातु का अर्थ शब्द कोशानुसार सेवा करना तथा आश्रयण लेना अर्थात् शरणापन्न होना दोनों है। यहाँ प्रसंगानुकूल भजने का अर्थ शरणापन्न होना ही ग्राह्य है। अर्थात् शरणार्थी चाहे अतिशय दुराचारी हो, वह यदि अनन्य भाव से एक मात्र सगुण ब्रह्म की ही शरण में प्राप्त होता है, तो उसे शरणापन्न होते ही साधु मान लेना चाहिये क्योंकि वह यथार्थतः यह निश्चय वाला है कि शरण्य देवतान्तर हो नहीं सकते। शरण्य तो एक मात्र सर्व समर्थ ब्रह्म ही है।

"हरितजि और भजिये काहि।
नाहिनै कोउ राम सम ममता प्रनत पर जाहि॥"

श्रीविनयोक्त पद २१६ को पढ़िये और विचारिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान गीताचार्य कहते हैं कि शरणापन्न दुराचारी चेतन तत्काल ही धर्मात्मा पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है और सदा स्थिर रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त करता है। प्रतिज्ञा पूर्वक गीताचार्य भगवान् कहते हैं कि भक्त कभी नष्ट नहीं होता। "ताते नास न होहि दास कर॥"

श्रीगीता के मानस जी के समभाव वाले श्लोकों को उद्धृत करने का हमारा तात्पर्य यही है कि शरणागति धर्म का श्री मुख कथित यह स्वरूप सर्वत्र एक ही समान है।

यह सब तो हुई सामान्य शरणागतों की बात। अब मध्य कोटि के प्रपन्नों का प्रसंग भी श्रीमानसजी के उसी ठौर वालें श्रीमुख बचन के आधार पर विचारना है।

मध्यम कोटि के प्रपन्न—

"जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥"

उपर्युक्त अर्धालियों में मायाबद्ध जीव की विविध स्थलों में बंटी हुई ममता के केवल दश ही प्रधान आधार देश बताये गये हैं। ये हमारे जन्म दाता अपने मातापिता है। इनके लाड़ प्यार लालन पालन आदि उपकारों को स्मरण कर, इनको अपना मानना स्वाभाविक है। इसी प्रकार विपत्ति के सहायक बन्धु को अपना सच्चा सुहृद मान लिया जाता है। अपने शरीर से पैदा हुये बेटा में किसे ममता नहीं होगी? कभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष अपनी कामिनी पत्नी को ही अपना एक मात्र आत्मीय मान कर, उसी में आसक्त रहता है। अपने शरीर में ममत्व प्रियत्व होना सभी देहधारियों का नैसर्गिक धर्म है। गृह में ऐसा ममत्व होता है कि कोई उस पर दावा करने आवे, तो उसके साथ मार पीट मामला फौजदारी तक की नौवत आ जाती है। यह सुहृद हमारा है, परिवार मेरा है। कौन इनसे हमें पृथक कर सकेगा ?

'मैं अरु मोर तोर तैं माया'—इस माया के मोहक प्रभाव से बचना बड़ा ही कठिन है। किन्तु स्वस्थ बुद्धि से विचार करने पर, ये सभी सृष्टिकर्त्ता प्रभु के जीव सिद्ध होते हैं। उन्हीं के विधान से इनके साथ हमारा शारीरिक सम्बन्ध हो जाता है। परन्तु इस जन्म के पहले, इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा होगा। अगले जन्म में भी इनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इस शरीर पर्यन्त भी इनसे जो सम्बन्ध है, वह सूत के पतले धागे के समान कमजोर है। थोड़ी सी तनातानी हुई कि सम्बन्ध का धागा टूट गया। फिर जुटने को नहीं। आये दिन इस संसार में ऐसी घटना देखने में आती है, पालन पोषण करने वाले माता पिता के उपकारों को भूल कर, कपूत उनका तिरस्कार करने लगता है। पत्नी को तलाक देने के हजारों दृष्टान्त हैं। इसी प्रकार औरों सम्बन्ध को समझ लीजिये।

उपर्युक्त सम्बन्ध स्वार्थ को लेकर है। हमसे जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धी का स्वार्थ सिद्ध होता है, वह प्यार करने लगता है।
स्वार्थ सिद्ध से निराश हुये कि ठुकराते देर नहीं।
'मन पछितैहैं अवसर बीते।
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥'
श्रीविनय १९८/३३

दश कच्चे धागे को एक ही में मिलाकर बाँट दो, तो वह मजबूत डोरी हो जायगी। अतः इन दशों से शारीरिक ममत्व का धागा हटा कर, उन्हें एक जगह बाँट कर, अनादि काल के सच्चे आत्मीय, परम सुहृद श्रीजानकीकांत के पादारविन्द में सुदृढ़ ममता जोड़ देना, मध्यम वर्ग के शरणार्थी का काम है। ब्रह्म से जीव का सर्वविध सम्बन्ध है।

"मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।"

उन्हीं में सर्व सम्बन्धों की स्थापना करना शरणार्थी का धर्म है।

'रामो माता मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥'
—सनत्कुमार संहिता।

या जग में जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
सो सब तुलसीदास प्रभु ही सों होई सिमिट इकठाई॥

इस प्रकार के अन्यत्र से सम्बन्धों को हटा कर, केवल सभी सम्बन्ध श्रीजानकी जीवन जू से ही जोड़ने का आदर्श जीवाचार्य श्रीलषणलाल जी में पाया जाता है।—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाठक इन्हीं जीवाचार्य के श्रीमुख से सुन लें—

'गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अन्तरजामी॥'

श्रीमानस ०/७०/४,५.६

समदरसी इच्छा कछु नाहीं—

जगत में किसी के साथ राग, किसी के प्रति द्वेष, तभी तक होता रहता है, जब तक मिथ्या सम्बन्ध पूर्ण ममत्व का जाल फैला हुआ है। सारा सम्बन्ध एक मात्र श्रीजानकी रमण के साथ जुटा कि राग द्वेष की निःशेष निवृत्ति हुई।

"उमा जे रामचरन रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहि जगत का सन करहि विरोध।।"
"तुलसी ममता रामसों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार॥"

श्री दोहावली ६५।

श्रीराम प्रेम का हृदय में प्रवेश होते ही समस्त इच्छाएँ आप ही आप समूल नष्ट हो जाती हैं।

जाको लहि कछु लहन की, चाह न मन में होय।
जयति जगत पावन करन, प्रेम बरन यह दोय॥"

हर्ष होता है अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में, शोक होता है, प्रिय वस्तु के नाश होने पर। जब इच्छा ही मिट गई कि इष्ट अनिष्ट, प्रिय अप्रिय का झगड़ा ही समाप्त। फिर हर्ष शोक क्यों? शरणार्थी अपने सर्व समर्थ कृपालु रक्षक श्रीरघु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाल जी में दृढ़ विश्वास जमा लेता है, तो वह सर्वथा सभी उपद्रवकारियों से निर्भय हो जाता है।

इस प्रकार मध्यम वर्ग के शरणार्थी में भी "समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मनमाहीं॥" ये अपेक्षित गुण स्वयमेव शरण्य कृपा से आ जाते हैं।

कृपामय शील स्वभाव वाले परम सुयोग्य श्रीराघव लाल जू मध्यम वर्ग के प्रपन्न को सज्जन का आदर पूर्ण अभिधान देते हैं। और कहते हैं कि ऐसे सज्जन को मैं अपने हृदय के स्मृति देश में जोगये रहता हूँ। मुझे इनमें इतना प्रियत्व होता कि क्या किसी लोभी को अपने धन के प्रति लालच पूर्ण प्रीति होगी?

"तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥'

भक्त वत्सल प्रभु श्रीविभीषणजी को सज्जन से भी बढ़ कर संत पद पर प्रतिष्ठित मानते हैं। और इन्हें अपना परम प्रीति पात्र मानते हैं। सर्वदा सत्य बोलने वाले रघुवंश विभूषण जू कहते हैं कि मेरा धराधाम में अवतरण एक मात्र तुम्हारे जैसे संतों के निमित्त ही होता है, अन्य किसी दूसरे कारण से नहीं।

अब सर्वोत्तम कोटि के प्रपन्न का लक्षण भी श्रीमुख से सुन लीजिये।

"सगुन उपासक पर हित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समन मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमानस ५/४८

सगुन उपासक कह कर, निगुर्ण मतवादी को शरणागति का अनधिकारी बताया। अद्वैत वादी स्वयं ही सर्व समर्थ ब्रह्म अपने को मानते हैं। फिर अपने आप की शरणागति कैसी? कृपा, दया, क्षमा, सौशिल्य, वात्सल्य, आर्जव मार्दव आदि अनन्तानन्त कल्याण गुणगण निलय सगुण साकार ब्रह्म ही शरण्य होते हैं। अतः उत्तम वर्ग के प्रपन्न का पहला लक्षण तो यह है कि वह उपासक होंगे अर्थात् उपनाम समीप में आसक्त नाम निवास करने वाला। अर्थात् तनसे न सही तो, मन से भी सतत अपने रक्षक के समीप में ही रहेंगे। दूर रहने पर अवसर पर, उनके द्वारा रक्षा में विलंब हो सकता है।

२– दूसरा लक्षण है इनका परहित निरत रहना।
'राम प्रान प्रिय जीवन जी के स्वारथ रहित सखा सबही के॥'

ऐसे सर्व सुहृद के समीप सतत रहने से उनके सौहार्दपूर्ण स्वभाव की छाप तो हृदय पर पड़ेगी ही। अतः अपने स्वामी की भाँति ये भी 'सर्व जीव हिते रता' हो जाते हैं।
'पर उपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥'
'संत सहहि दुख पर हित लागी॥'
भुर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह विपति विसाला॥
७/१२१

३– इनका तीसरा लक्षण होता है।
निरत नीति— नीति कहते हैं लोक के लिये शास्त्र निर्दिष्ट आचार व्यवहार पद्धति को। संत सतत परोपकार परायण होते हैं। लोक हितके प्रतिकूल इनका एक डग भी आगे नहीं उठने को।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये जानते हैं कि हमारे शरण्य को नीति पालन बहुत ही प्रिय है।

लरिकाइहि ते रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी।।"

नीति विरुद्ध व्यवहार इन्हें सुहाता ही नहीं।

"नीति विरोध सुहाइ न मोही।"

अतः अपने स्वामी को सतत रिझाने वाले होते हैं उत्तम प्रपन्न

"सम सीतल नहि त्यागहि नीती। ३/४३/२ तथा

"सम दम नियम नीति नहि डोलहि।" ७/३८। होते हैं।

"कोटि विघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग।६/३३

४- उत्तम प्रपन्नों का चौथा लक्षण होता है- नेम को दृढ़ता पूर्वक निभाना। यहाँ नेम का तात्पर्य है अपने इष्टदेव में अनन्य प्रेम। यथा—

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नबीना
२/२३४/३

नेम तौ पपीहा ही को प्रेम प्यारो मीन ही को,

तुलसी कही है नीको, हृदय आनि।।

श्रीगीतावली सुन्दर काण्ड ७/४

उपर्युक्त उद्धरणों में नेम कहा गया है पपीहा के अनन्य निष्ठा को।

५- पाँचवा लक्षण उत्तम प्रपन्न का है द्विज पद में प्रेम करना। "यहाँ वेद पाठी भवेत्विप्रः" इस स्मृति वचन से श्रुति स्मृति शास्त्र विद्वान ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण को ही विप्र कहा गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बात ऐसी है कि श्रीगीताजी के सिद्धान्त अनुसार शास्त्र के प्रमाण अनुसार संत को अपने कर्त्तव्य कर्म का सम्पादन करना चाहिये। जो शास्त्र विधि का त्याग कर स्वेच्छा पूर्वक मनमानी कर बैठते हैं, उन्हें न तो कोई सिद्धि मिलती है, न सुख, न परम गति।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ २४

श्रीगीता अध्याय १६

प्रेम पोथी के स्वाध्याय से भजन प्रेमियों को कहाँ अवकाश कि वह श्रुति स्मृति का अवगाहन कर पावें ? ऐसी स्थिति में इन्हें विप्रों से ही अपने कर्त्तव्य विषयक शास्त्र मर्यादा का ज्ञान प्राप्त करना है। अतः विप्रों के प्रति श्रद्धा-प्रेम रखना आवश्यक है। दूसरे हमारे इष्ट श्री रघुवंशमणि ब्रह्मण्यदेव है, अतः आपके आश्रितों को भी विप्र भक्ति करना कर्त्तव्य हो जाता है।

उपर्युक्त पांचों लक्षण विशिष्ट सर्वोत्तम प्रपन्न तो श्री-राघव जी के वहिर्प्राण ही हैं। इनके प्रति आप के स्नेह की क्या प्रशंसा की जाय ?

अब हम श्रीमुख कथित अन्तिम प्रेमोद्गार पर विचार करेंगे।

'सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने स्वभाव कथन का उपसंहार करते हुये, श्रीमुख वाणी है कि हे लंकेश्वर श्रीविभीषण जी, मैंने जो तीन कोटि के शरणागतों के भिन्न-भिन्न गुण गिनाये हैं वे समस्त गुण गण, आप में एकत्र ही सिमिट आये हैं। यही कारण है कि आप में मेरा सर्वाधिक प्रियत्व है।

प्रथम कोटि के, शरणापन्न होने के पहले, सविकारी होते हैं। उन्हें आप अविलम्ब साधु समान बना लेते हैं। यदि निशिचर कुल में जन्म लेने के कारण, आप अपने को विकारी मानते हैं, तथा रावणानुज होने के कारण, रावण कृत चराचर द्रोह के संगी होने के नाते अपने ऊपर भी चराचर द्रोह कृत अपराध का भार लेते हैं, तो कोई बात नहीं। मैंने आज ही इसी दम साधु बनाया आपको, अब तो ग्लानि नहीं न करेंगे? अरे मैंने बनाया है जी।

आपने सारे ममत्व को सारे संसार से हटा कर, मेरे साथ ही सब नाताओं को दृढ़ता पूर्वक जोड़ा है, अतः आप को मैंने अपने हृदय के स्मृति देश में सँजो कर रख लिया। मेरी ऐसी लोलुप स्मृति आपकी मनमें रहती है, जिस लोलुपता के आगे कंजूस की धनप्रीति बहुत हलकी होगी।

सर्व ममत्व त्यागने की बात श्रीविभीषण जी ने स्वयं कही है। यथा—

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणां गतः।१६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।
सर्वलोक शरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ १७

श्रीवाल्मी० ६ १७ ।

अर्थात् मैं पुत्र और पत्नियों को त्यागकर, श्रीराघवजू की शरण में आया हूँ। ऐसा आप द्वारपाल, शीघ्र सर्वलोक शरण्य महात्मा राघव से जाकर निवेदन कर दें, कि विभीषण आपके शरणागतपालक द्वार पर खड़ा है। पुनः

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ।
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥

वाल्मी० ७/१९/५६

श्रीविभीषणजी अपने शरणागत वत्सल स्वामी श्रीराघवजी से स्वयं निवेदन कर रहे हैं कि मैंने लंका को, मित्रों को तथा निजी धन सम्पत्ति को त्याग कर दिया है। अब आपही के अधीन मेरा राज्य, जीवन तथा सुख सब कुछ है। श्रीविभीषणजी के इस सर्वस्व समर्पण पर रीझकर, आपने तत्काल ही उनके सामने प्रतिज्ञा की– विभीषणजी मैं सच कहता हूँ मैं रावण, उसके प्रधान सेनापति प्रहस्त तथा इन्द्रजीत पुत्र मेघनाद को मारकर तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा। रावण अपनी प्राण रक्षा के लिये चाहे रसातल में जा छिपे, या पाताल की ओट ले ले अथवा अपने परदादा ब्रह्माजी का ही शरणापन्न हो जाय, मैं किसी भी दशा में उसे जीता नहीं छोड़ने को। रणभूमि में बन्धु बान्धव तथा पुत्रों के सहित रावण को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मारे बिना अयोध्या लौटकर, नहीं जाऊँगा। अपने तीनों भाइयों की शपथ खाकर आप से कहे देता हूँ।

अहं हत्वा दसग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।
राजनं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥ १९ ॥
रसातलं वा प्रविशेत् पातालं वापि रावणः।
पितामह सकाशं वा न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ २० ॥
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ २१ ॥

श्रीवाल्मी० ६/१९

यह सब तो हुये, श्री विभीषण जी में मध्यमवर्ग के शरणागतों के गुणगण। अब आप में परमोत्तम प्रपन्नों के गुणगण भी गिना रहे हैं।

१- श्री विभीषण जी सगुण उपासक हैं, एक जन्म के नहीं, अनादिकालीन। नित्य साकेत विहारी परिकरजो ठहरे! श्रीसदाशिवसंहिता के प्रथमाध्याय में लिखा है कि नित्य श्रीसाकेत नगर के पश्चिम द्वार पर धर्मात्मा श्रीविभी-षणजी, पूर्व द्वार पर विश्वात्मा तैजसात्मक श्रीसुग्रीवजी उत्तर द्वार पर वीरवर श्रीअङ्गदजी, दक्षिण द्वार पर श्री-राघव जू के लाड़िले श्रीहनुमानजी नित्य रक्षक हैं।

पश्चिमां पाति धर्मात्मा राक्षसेन्द्रो हरिप्रियः।
पूर्वमावृत्य विश्वात्मा सुग्रीवस्तेजसात्मकः ॥
उत्तरं रक्षति वीरो वालिपुत्रो मम प्रियः।
दक्षिणां तु सदा पाति हनुमान रामवत्सलः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब तो आप इन्हें नित्य परिकर मानने में आना-कानी नहीं न करेंगे ? श्रीमानसजी के प्रसंग से भी यही सिद्ध होता है—

श्रीजामवन्तजी अंगदादि बानरों को समझा रहे हैं—

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी।।
निज इच्छा प्रभु अवतरई, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोच्छ सुख त्यागि।।

श्रीमानस ४/२६

ऊपर के मानसोद्धरण में निर्गुन शब्द का अर्थ तीनों मायिक गुणों से अतीत मानना चाहिये। क्योंकि

राम अनादि अवधपति सोई।

से इनको श्याम सलोने द्विभुज रूप से नित्य अयोध्या विहारी कहा गया है। पुनः श्रीविभीषणजी, प्रतापभानु के प्रधान सचिव अवतार में भी सगुणोपासक ही थे—

सचिव धरम रुचि हरिपद प्रीती।

श्रीमानस १/१५५/३

सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ विमात्र बंधु लघु तासू।।
नाम विभीषन जेहि जग जाना। विष्नु भगत विग्यान निधाना।।

श्रीमानस १/१७६/४५

गए विभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र वर मागु।
तेहि मागेउ भगवंत पद, कमल अमल अनुराग।।

श्रीमानस १/१७७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परहित निरत—श्रीरामानुरागियों का तो सहज स्वभाव होता है ।

'पर उपकार वचन मन काया ।'

सो श्रीविभीषणजी रावण के अत्याचार सम्बन्धी कार्यों में कभी सहायक नहीं हुये । युक्ति पूर्वक उसे इन कुकर्मों से वर्जन ही करते रहते थे । स्वयं सर्वहित साधक ही बने रहतेथे ।

निरत नीति— श्रीविभीषणजी की नीति प्रियता की प्रशंसा स्वयं श्रीमुख से ही हुई है—

कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मंडली बसहु दिन राती । सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती ।अतिनय निपुन न भाव अनीती॥

इस प्रकार उत्तम प्रपन्न के सद्‌गुणों से भी आप विभूषित हैं । अतः श्रीराघवजू के आप प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियहैं ।

जब रावण ने कुपित होकर, श्रीविभीषणजी पर प्राण घातिनी शक्ति छोड़ी थी, तब आपने श्रीविभीषणजी को अपनी पीठ के पीछे छिपाकर, अपने प्राणों की बाजी लगाकर, उस शक्ति का घात अपनी छाती पर ओड़ लिया था ।

पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ, छाँड़ी सक्ति प्रचंड ।
चली विभीषन सन्मुख, मनहुँ काल कर दंड ॥ ९४ ॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा । प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत विभीषन पाछे मेला । सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
लागि सक्ति मुरछा कछु भई । प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥

६/९४/१-३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि उसे यहाँ अधिक कर दिखाया ।

जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं ॥

यह सब तो हुआ श्रीमुख कथित, श्रीराघव जू के शरणागतवत्सल स्वभाव पर विवेचन। दूसरी विशेपता आपके स्वभाव सम्बन्धी है, भक्तों के प्रति आपका नैष्कापट्य। श्रीमानसजी के विविध उद्धरणों से यही सिद्ध होता है ।

पंपा सरोवर पर, देवर्पि श्रीनारदजी के साथ समागम काल में आपने श्रीमुख से कहा कि मुनिवर ! आप तो मेरे स्वभाव को जानते ही हैं। मैं अपने स्वजनों से कभी कोई दुराव नहीं रखता। भला बताइये तो सही, कौन सी ऐसी अपने पास प्यारी चीज है, जो आपके लिये अदेय हो। आप निस्संकोच अपनी मुहमाँगी वस्तु मांग लें। मैं कभी ना नहीं कहने का !

जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करौं दुराऊ॥
कवन बस्तु अस प्रिय मोहि लागी।जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी
जन कहुँ कछु अदेय नहि मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे॥

श्री अयोध्या में श्रीराम राज्य की स्थापना होने के पश्चात् की बात है। एक बार चारों भाई श्रीहनुमतलालजी के साथ श्रीअवध के सुन्दर उपवन में विहरने गये थे। श्रीसनकादिकों का वहाँ समागम हुआ । उनके प्रति श्रीराघवजी के द्वारा अपार प्यार दर्शाया गया। श्रीभरतलाल ने विचारा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काश ! हम भी सन्त स्वभाव सम्पन्न होते। तो हमारी भी श्रीराघवजू के श्रीचरणों में प्रीति बढ़ जाती। किन्तु 'न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं।' अतः क्या अच्छा होता कि श्रीमुख से ही उन सन्त गुणों को सुन लेते जिससे-

तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ।

होतं ही। परन्तु श्रीभरतलालजी वह ठहरे, जो-

महू सनेह सकोच बस, सनमुख कही न बैन ।

अतः संकोचाधिक्य प्रश्न करने नहीं देता। श्रीहनुमत-लालजी के द्वारा अपनी जिज्ञासा-वृत्ति कहवाई। इस पर श्रीराघव जू के श्रीमुख से जो प्रेमोद्‌गार निकले वह भक्ति भाव का अनुजीवन है ! श्रीहनुमान तुम जानते नहीं ? श्री-भरतलालजी से कब मैंने अन्तर रखा है ? उनकी प्रत्येक रुचि जोगाने में मुझे अपार हर्ष होता है।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीन दयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहही। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥
तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥

श्रीराघवजू के स्वभाव में सरलता की हद तो हुई श्री-जनकपुरवाली पुष्पवाटिका लीला के पश्चात्। आप श्रीगिरिजा बाग में विवाहार्थिनी श्रीविदेह कुमारी से आँखें लड़ाकर लौटे हैं। भला गुरुजनों से भी ऐसी बातें खोलकर कही जाती है? कौन समझावे इन भोले भाले आर्जव स्वभाव वाले घुँघरारे जुल्फ वाले को !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

कुटिल स्वभावापन्न प्रपन्नों की भाँति, आप कुटिल अलकावलि को भी माथे पर चढ़ाकर रखते हैं, परन्तु आप में कहीं कुटिलता ढूढ़ने पर भी नहीं मिलेगी। धन्य हो सरल स्वभाव वाले ! बलैया लेऊँ आपकी बार बार !!

❀ परिशिष्ट भाग ❀

श्रीराघव जू के सर्व सुखद स्वभाव की प्रशंसा आपके वैरी भी करते हैं।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥

आप दृष्टांत के लिये रावण द्वारा प्रेषित गुप्तचर राक्षस को ले सकते हैं। उसने कपट पूर्वक वानर वेष बना रखा था। श्रीविभीषणजी की शरण स्वीकृति काल में जो श्रीराघव जू की शरणागत वत्सलता देखी, उस स्वभाव पर वह बिक गया। तब उसके हृदय में आपके प्रति ऐसा प्रेमावेश हुआ कि कपट करना भी भूल गया।

जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥
सकल चरित तिन्ह देखे, धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं, सरनागत पर नेह॥ ५१॥
प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥

यहाँ के देखे हुये श्रीराघव स्वभाव, से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने रावण को भी समझाया। स्वामिन् ! आप क्या हठ पकड़े हुये हैं ? अत्यन्त सुकुमार स्वभाव वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराघव जू की शरण में चलिये । आपके सारे अपराध वे क्षमासिन्धु माफ कर देंगे और मिलते ही आपको अपनी कृपा से निहाल कर देंगे ।

सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही । उर अपराध न एकउ धरिही ॥

जब वैरी इस प्रकार प्रभावित होता है, तो वानरों का क्या कहना ?

निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा

वे निषादराज गुह—

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेअइ सींचा ॥

थे । उनकी श्रीराम राज्याभिषेक के अवसर पर इतनी खातिरदारी हुई कि घर जाकर, अपने परिजनों में श्रीराघव-जू के स्वभाव की बार बार प्रशंसा करते हुये भी नहीं अघाते थे ।

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषन वसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू । मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
वचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भरि लोचन वारी ॥
चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभु सुभाउ परिजनहि सुनावा

सबको यथोचित मान देने का स्वभाव पड़ गया है, श्रीराघवलाल को । भला, यह छूटने वाला है ? देखिये न । विवाह काल में ऐश्वर्य दृष्टि से अपने दूसरे ससुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की मानसिक पूजा कर रहे हैं ! आपके ऐसे मानद स्वभाव को देखकर देवगण क्यों न प्रमुदित होंगे ?

सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये।
अवलोकि सील सुभाउ प्रभु को विबुध मन प्रमुदित भये ॥

माधुर्य लीला में भी आपके कुलगुरु ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी आपके शील स्वभाव को देखकर मुग्ध रहते थे । संभाव्य राज्याभिषेक का संवाद सुनाने, जब आप श्री कनक भवन में जाते हैं, उस अवसर पर श्रीरघुलालजी की गुरु अर्चना मानस प्रेमियों को गुरुनिष्ठा का शतशः पाठ पढ़ाने वाली है ।

बरनि राम गुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥

श्रीकैकयी जी के द्वारा की गई करणी तथा उसका परिणाम श्री भरतलालजी से कहते कहते, जब उस अवसर पर श्रीराघव की मातृ पितृ भक्ति की सराहना करने लगे तब तो, श्रीवशिष्टजी से रहा नहीं गया। रो पड़े !

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी
भूप धरम व्रत सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहर प्रेम निबाहा ॥
कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ ॥

बात श्रीचित्रकूट की है। क्या श्रीअयोध्या वासी, क्या श्रीमिथिला वासी श्रीराम सानिध्य सुख को छोड़कर, घर जाने का नाम तक नहीं ले रहे हैं। श्रीराघवलाल को इस बात की बड़ी चिन्ता है कि एक तो हम पितृवचन परवश, बनवास का कष्ट झेल रहे हैं। हमारे साथ-साथ हमारे प्राणोपम ये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर वाले तथा ससुराल वाले क्यों वन का कष्ट उठा रहे हैं ? परन्तु मैं शील वश, इन्हें घर जाने को कह नहीं सकता। श्रीगुरुदेव ही इस कठिन समस्या को हल करेंगे।

श्रीवशिष्टजी विचारते हैं आपका ऐश्वर्य। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, दिक्पाल लोकपाल, तथा नरलोक से नागलोक के समस्त राजाओं के नियन्ता हैं। वह महामहिम राघव आज मुझे गुरु मानकर, अपना नियन्ता बना रहे हैं।

विधि हरिहर ससि रवि दिसिपाला।माया जीव करम कुलिकाला
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुनाई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जियँ देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबही के॥

जो ऐसे ऐश्वर्यवान् हैं, उनका शील स्वभाव तो देखो।

राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरे हाथा॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥

रुख, देखकर, गुरु से बोलना, सारा भार गुरु पर न्यास करना, बिना पूछे, श्रीगुरुदेव से बोलने में अपनी ढिठाई मानकर सकुचा जाना, आदि व्यवहार आपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुजनों के समक्ष संकोची शील स्वभाव का परिचायक है। श्रीवसिष्ठजी इस समय आप के शील स्वभाव से इतने अधिक प्रभावित हैं कि श्रीमिथिलेशजीसे मिलने पर अन्य प्रयोजनीय बातें करने के पहले आप श्री राघवजी के शील सनेह पूर्ण स्वभाव का ही बखान कर डालते हैं।

करि प्रनाम तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥

अन्त में हम श्रीगोस्वामिपाद विरचित एक कवित्त के साथ, अपने निबन्ध को समाप्त करते हैं।

रूप—सील सिन्धु, गुन सिन्धु बंधु दीन को
दया निधान जानमनि बीर बाहु-बोल को।
स्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के
सिला-साप-समन, निबारह्यो नेहु कोल को॥
तुलसी उराउ होत राम को सुभाउ सुनि
को न बलि जाइ न बिकाइ बिनु मोल को।
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुरागु न सो
बड़ोई अभागो, भागु भागो लोभ लोल को॥

अर्थात् श्रीराघवजी अत्यन्त रूपवान् हैं। शील गुण के तो सागर ही हैं। महान् से भी महान् होकर भी आप हैं दीन बन्धु। दया तो आपके हृदय में कूट कूट कर भरी है। आप ज्ञानियों के शिरमौर हैं। अपने वचन के पक्के तथा बड़े ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शूरवीर हैं। ऐसे महान् होकर भी गिद्धराज जटायु को अपने पिता तुल्य जानकर, उनका अपने ही करकंजों से श्राद्ध किया। श्रीशबरीजी के बेर की प्रशंसा तो आपकी प्रसिद्ध ही है। पतिश्राप वश पाषाण बनी हुई अहल्या का श्राप विमोचन किया तथा कोल भीलों के साथ मैत्री कर, उनके साथ नेह को अन्त तक निभाया। ऐसे सुस्वामी के स्वभाव सुनकर, आपके प्रति भक्ति भावना की वृद्धि होती है। जी चाहता है बार बार आपकी बलैया लेते रहें, तथा बिना दाम के बिककर आपके सदा सर्वदा के लिये दासानुदास बन जायँ। जिसे ऐसे सत्स्वभाव सम्पन्न इष्ट के प्रति अनुराग न हुआ वही संसार में सबसे बड़ा अभागा है। सांसारिक क्षुद्र नश्वर वस्तु के लोभ लालच में पड़कर, उसने अपने सौभाग्य ही को गँवा दिया।



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुद्रक:—मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुद्रक:—

मनीराम प्रिन्टिंग प्रेस,

श्री अयोध्या जी [उ० प्र०]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri